प्रेमचन्द की रचनाओं का सामाजिक एवं राजनीतिक आयाम

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत]

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक :

प्रोफेसर के० सी० जोशी

राजनीति विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री :

रेनू श्रीवास्तव

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

१९९७

आत्म निवेदन

स्नातकोत्तर कक्षा में अध्ययन करते समय से ही प्रेमचन्द्र कथा -साहित्य के प्रति उसमें अभिव्यक्त भारतीय जीवन की सनातन प्रतिष्ठा ने मेरे हृदय मे विशेष अभिरुचि उत्पन्न कर दी थी। मेरी अभिलाषा जो अध्ययन कालावधि जन्म लेती रही। परीक्षोत्तीर्णान्त ने उसे कैशोर्यावस्था का वरदान दे दिया। फिर शोध कार्य हेतु जब उपक्रम की बारी आयी तो पुनः द्रव्यकालीन दृढ़ता का रूप धरने लगी। अन्ततः गुरुजनो ने उसे प्रतिष्ठित करने का मार्ग भी प्रशस्त किया, वह था इस शोध प्रबन्ध के लिए शीर्षक(विषय) का चयन। सौभाग्य था कि मेरी चिर संजोआकांक्षा को आखिर मूर्तरूप मिला ही उसी मूर्तरूप की प्रतिष्ठा के लिए मै तत्पर हुई।

शोध प्रक्रिया को गतिशील बनाने मे मुझे पदे-पदे कठिनाईयाँ ही कठिनाईयाँ आती रही किन्तु मेरी दृढ़ इच्छा और श्रम ने प्रत्येक क्षण धीरज बॅधाया। मेरे शोध निर्देशक प्रो0 के0सी0 जोशी ने जब भी मेरे समक्ष किसी प्रकार व्यवधान उपस्थित हुआ उसे निवारित कर मुझे सतत प्रोत्साहित किया। सच तो यह है कि उनके सतत प्रोत्साहन से ही मेरा शोध कार्य पूर्ण हो सका है। इनके अतिरिक्त मुझे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के राजनीति विभागाध्यक्ष सर्व श्री डॉ0 यू0 के0 तिवारी तथा भूतपूर्व हिन्दी विभाग के प्रोफेसर डॉ0 किशोरी लाल से भी समय समय पर प्रेरणा और अनुदेश मिलते रहे है, उनके प्रति मै कृतज्ञ हूँ।

शोध प्रबन्ध पाँच अध्यायों ---

1- प्रेमचन्द का सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक विचारधारा।

2- प्रेमचन्द के पूर्व साहित्य मेसामाजिक, राजनीतिक अनुभूति अन्तर्दृष्टि।

3- प्रेमचन्दसाहित्य में सामाजिक अन्तर्संघर्ष।

4- प्रेमचन्द साहित्य मे राजनीतिक सन्दर्भ।

5- प्रेमचबन्द्र साहित्य में गाँधीवाद की अवधारणा एवं स्वरूप।

में विषय विश्लेषण की सुविधा के लिए समायोजित किया गयाहै।

शोध प्रबन्ध में समस्त विषय- विश्लेषण और तथ्य-संयोजन मेरा निजी है।

विषय- सूची

×ₓ× अध्याय : एक ×ˣₓ

: 19 शताब्दी का अन्त तथा 20 शताब्दी के प्रारम्भ में :

: प्रेम चन्द्र का सा० रा० धा० आ० विचारधारा :

नामधर्मिता तथा रचनाधर्मिता दो रूपों से मिलकर साहित्यकार का जो व्यक्ति निर्मित होता है, उसमें युगधर्म अथवा युगबोध का सूत्रात्मक प्रतिबिम्बन संनिहित रहता है। उस प्रतिबिम्बन-सूत्र की आधार-भूमि युग की स्थिति- परिस्थिति - जनित सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक घटनाएं एवं साहित्यकार की नामधर्मिता के परिवेश होते हैं। नामधर्मिता का संबन्ध व्यक्ति के जागतिक कार्यकलाप से रहता है, साहित्यकार का वही सामान्य- व्यक्ति जगत् के साधारण - कर्मस्थल की भूमिका को निर्वाहते समय मानव की मनोगत भावनाओं, रूढ़िगत- उत्प्रेरणाओं तथा समाजगत्- अवधारणाओं के सत्य को शिव से सयोजित करने में सतत् प्रयासरत रह अपने अन्तर्जगत- जन्म अनुभूति पर शिवाशिव की सीमान्तर्गत समेटता है। शिव- अशिव की सीमा में आबद्ध साहित्यकार का एक अनाम कल्पना- लोक रूप धारता है, उस रूप की सौन्दर्य- सुघर रश्मि का आभा - परिसर अजानी चेतना को अनायास आमंत्रण देकर वाणी-राग से उसको संश्लिष्ट कर बैठता है, तब राग- संगमित उसका अवचेतन पूर्णता के प्रतिभास-क्षणों में निज नाम-धर्मिता के अस्तित्व से परे पहुँच रचना-धर्म का अनुष्ठान करता है।

रचना धर्म का यही अनुष्ठान उसके रचना-कर्म का शाश्वत्- अभिज्ञान

का अभिधान जितना सुष्ठु, जितना शिष्ट, सहज, सुभाग प्रतिमान प्रस्तुत कर वाणी का अवस्थान उपस्थित कर सका उतना उसके रचना - व्यापार को अवबोध दे पाता है । यही अवबोधन युग-धर्म के विश्लेषक- सूत्र को जन्माता, समेटता फिर अर्थान्वित से अनुगमित करने के लिए दिशा- बोध देता है । दिशा - बोध के समुचित अधिग्रहण से युग तथा साहित्यकार के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को प्रतिबिम्बित करना सम्भव होता है । कलाकार घटना का परिदृश्य तूलिका द्वारा निर्मिति में रेखांकन से पूर्व कल्याण एवं अंकन की सापेक्षता पर केन्द्रित होकर उस घटना से उद्गमित लोकमंगल-रेख को सौन्दर्य - भूमि पर स्थिरता देने के अपने अभिलाष को आकार प्रदान करता है, उस आकार अथवा निर्मिति में दर्शक जब कलाकार की - सी एकाग्रता धारण कर उसके सौष्ठव से आकृष्ट , अपने हृदय को रमाता है तभी निर्मिति की स्थिति - परिस्थिति जनित परिप्रेक्ष्य में सत्य को अवधारित करने में सफल हो पाता है ।साहित्यकार भी मूर्तिकार अथवा चित्रकार के समान सामाजिक - सांस्कृतिक परिवेश में मन को तज्जनित परिदृश्यों में रमाता फिर उसके आधारभूत सूत्रों का आकलन करता है, उस आकलन को निज की धर्मिता से संयोजित कर लोक- मानस की मांगलिक चर्वणा द्वारा आस्वादन प्रक्रिया में उसे अभिनिवेश दे एक सार्वभौम रसानुभूति के साथ अपनी कल्पना को संगमित करने के पश्चात उसके शिवरूप का वाणी पर अव- तरण करके लोक- हित जीवन्त- पाथेय उपस्थित कर देता है, यही पाथेय

अनुष्ठान में पाठक की सापेक्ष - सहभागिता रचनाकार की मूलभावना एवं उसके पूर्ववाली सुंगमित घटनाओं, सम्भावनाओं और तज्जनित- अवधारणाओं के रूप बिम्ब ग्रहण करती है । यही प्रतिबोध व्यापार युगधर्म को रेखामित करता है दूसरे शब्दों में रचनाधर्मी के युग को प्रतिच्छवि देता है ! हम उसी सीमा- रेखा पर प्रेमचन्द यग का विश्लेषण करना चाहेंगें ।

प्रेमचन्द - युग का विश्लेषण, भारतीय इतिहास के उस काल का आकलन है जब भारत के लोकमानस में स्व - अस्तित्व - रक्षणार्थ उत्कठ- अभिलाष, सामाजिक- वैषम्य के निवारण - निमित्त आक्रोश, सनातन परं- म्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए मन में कसक, सांस्कृतिक - आस्था के प्रति- ष्ठापनार्थ अभिप्सा क्षण - प्रतिक्षण उसे उद्वेलित कर रही थी । जनसमाज निज की भारतीय पहिचान से विमुख, साम्राज्यवादी- तमस्तोम में चेतना के प्रखर - ज्योतिवाहक की खोज करता रहा । ऐसी ज्योति की आवश्यकता थी जिसकी किरणें, उसके अन्तर्तम में समाहित नैराश्य, अधैर्य, प्रमाद से आच्छन्न स्वत्व - तेजस को पुनरालोक प्रदान कर दौर्बल्य - जनित अकर्म- ण्यता के प्रवसाद कुहासे को निवारित करने की उत्प्रेरणा दे सके । वस्तुतः प्रेमचन्द का रचनाकार व्यक्ति का अवतरण - काल, राष्ट्रीय - अस्मिता की पुनर्स्थापना के लिए उन्मुख हो रहे भारतीय - मानस में चिरकाल से पलती उत्कटेषणा का संघर्ष काल था । उस एषणा को दिशा- बोध देने वाले के रूप में प्रेमचन्द के कथा - साहित्य को गौरव प्राप्त हुआ । उनका कथा- कार व्यक्ति ने सामाजिक - सांस्कृतिक परिवेश में रमकर, जनमानस की

रचनाओं में वाणी के माध्यम से मुखर करके उसका सार्वजनीन स्वरूप उप - स्थापित किया । उनकी उस उपस्थापना द्वारा जनमानस में चिरसुषुप्त स्वतंत्र्याकांक्षा उद्वेलित हो उठी । जन- जन ने अपने कर्म का बोध किया अपने को पहिचाना, अपने अवस्थान की अभ्यर्चना, निमित्त साहस, सुम- नावलि संजोकर संकल्परूप माला को संघर्षरूप धागे में गूथना प्रारम्भ - किया । इस प्रकार प्रेमचन्द का रचनाकार- व्यक्ति , युग में व्याप्त अव- साद - विषाद के गरल को अपनी कथासाहित्य रूप अंजलि में भरकर पान कर डाला एवं परिस्थितियों से अभिप्रेषित जयोन्मुखी उद्भावनाओं का अमृत - घट लोकोदय- मंत्र बांचकर उडेला, अमृताप्लावित लोक - चेतना फिर स्वातंत्र्योन्मुखी हो उठी । यही रहा कथाकार प्रेमचंद का युगा - वदान । इस युगावदान को स्पष्ट करने के लिए हम क्रमशः तत्कालीन राज- नीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा धार्मिक अवस्थाओं का आकलन प्रस्तुत कर रहे हैं -

सामाजिक, सांस्कृतिक- स्थैर्य ह्रासोन्मुखी - धारा से आक्रान्त हो कर विखण्डित प्राय, साम्राज्यवादी - छलना की चमत्कृत अवंचनामयी- सभ्यता से भारतीय जनमानस प्रदूषित धर्म का मंगल स्वरूप धनपिशाचों के आतंक से स्वार्थसाधन पर केन्द्रीभूत, सार्वजनिक- अभ्युत्थान - भावों का चिन्तन श्रेयस् व्यष्टिवादी विचार - प्रवाह में डुबकियां लेने लगे थे । कारण, भारत भू- पर्वत - जंगल, उपत्यका, अधित्यका, सर, सरित, लता, तरु वनस्पतियों पर मधु - क्षरण करने वाले आयु की स्नेहिल - थपकियों का दुलार किसी

अमूर्त भयवश स्वच्छन्द रूप से दुर्लभ हो रहा था, जन की मानसिकता चिर-परिचित तेजस से संगमित नहीं, वह नैतिक, पराभव के कारण क्लीवताग्रस्त हो चुकी थी । अर्थ यह कि वह भारत की पराधीनता का युग था, मन, मानसिकता, कार्य - कार्यक्षमता, वाणी तथा वाग्विलास सब कुछ अतीत के इतिहास के विषय वस्तु रह गये थे "स्व" स्वच्छन्द नहीं, विकास और विहास मन्द उनमें परिस्पन्द नहीं । उस समय जनमानस समग्रतः अस्तित्व की प्रतिस्थापना के लिए स्वातंत्र्य - मंत्र का समवेत महोच्चार - श्रवणार्थ आकुल था । प्रेमचन्द ने अभिलाष प्रकट किया था - " मेरी अभिलाषाएं बहुत सीमित हैं । इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि हम अपने स्वतंत्रता - संग्राम में सफल हों । मै दौलत और शोहरत का इच्छुक नहीं हूँ। खाने को मिल जाता है, मोटर और बंगले की मुझे हविस नहीं है, हाँ यह जरूर चाहता हूँ कि दो- चार उच्चकोटि की रचनाएं छोड़ जाऊँ लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतंत्रता प्राप्ति ही हो । प्रेमचन्द के ये उद्गार निश्चय भारतीय जन- मानस की उद्वेलित - भावनाओं के प्रत्याख्यान नहीं हो सकते क्योंकि रचनाकार का व्यक्ति समाज का ही एक अंग होता है । उसकी अभि-लाषा में समष्टि की आकांक्षा का समग्र समाहित होकर, लोक- मंगल की रेख पर एक निर्मिति - विशेष को सहज जन्माता है । वही सहज जन्म सहस्रशः रूपों में उसकी रचना- धर्मिता को जीवन्त बनाता है उसकी वह जीव-न्तता जनमानस की प्रेरणा शक्ति का अक्षय स्रोत बन, शुभ सन्तु ते पन्थाः के आशीर्वचनों द्वारा भावी इतिहास की सृष्टि करता है ।ऐसे ही निष्क-लुष निरवधि, तेजस्वी भारतीय विचारधारा के चतुष्पथ - प्रहरी स्वरूप

प्रेमचन्द युगधर्म की सीमा में स्वयं तो कम परन्तु उनके रचना कर्म की निस्सीमता में युग बोध समा गया ।

पराधीनता का वह काल जिसमें प्रेमचन्द का रचनाकार - व्यक्ति अवतारित हुआ , राजनीतिक - परतंत्रता, सामाजिक, विशृंखलता, आर्थिक विक्षोभ, शोषण, सांस्कृतिक, संक्रमण एवं धार्मिक अवसाद से आक्रान्त जडिमा-ग्रस्त नैतिक समाष्टवाद का मार्गान्वैषी बन, जीवन मुल्यों की पुनर्स्थापना के लिए संघर्ष कर रहा था । प्रेमचन्द का युग ऐसा संक्रान्तिकाल था, जब प्रथम स्वाधीनता - आन्दोलन 1857 की राष्ट्रीय अस्तित्वानुषंगिनी - भावनाए अपेक्षाकृत उत्कट रूप धर रही थी । दूसरी ओर ब्रिटिश - साम्राज्यवाद अधिक सुदृढ़ सत्तासम्पन्न हो चुका था । एक ओर स्वातंत्र्य भावोन्माद दूसरी ओर अधिकार - मद । प्रथम स्वातंत्र्यान्दोलन - स्वरूप यद्यपि वर्षावधि - पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनावसान भी भारतीय जनभावना को कथमपि उपलब्धि दायक न बन सका । क्षोभ असन्तोष में अनल्पता का ही सचार हुआ । एक प्रकार से अब अपेक्षाकृत विद्रोहांकुर पल्लवित एव पुष्पित होने लगे थे । मध्यममार्ग अन्वेषणार्थ इण्डियन नेशनल कांग्रेस संस्था की स्थापना एक दूरदर्शी आंग्लीय जन ए० एच० ह्यूम द्वारा की गई । यह संस्था संस्थापक के मन्तव्य की पूर्ति न कर भारतीय जनमानस में अंकुरित आंग्ल - शासन की विद्रोही - भावना को उद्वेलित करने में सहायक बनी । वस्तुतः नेशनल कांग्रेस ने एक सजग, सक्षम राष्ट्रीय आन्दोलन को जन्माया । यद्यपि यह सही अर्थों में राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं स्वीकारा जा सकता, कारण

रहा था, वह अंग्रेजी शिक्षा सनाथ देश, विदेश के बुद्धिजीवियों का समूह रहा । तथापि यह द्वितीय स्वाधीनता, आन्दोलन तो था ही जिसने भारतीय जन मानस को निज अभिज्ञान की ओर उन्मुख किया । इस राजनीतिक संघर्ष का प्रभाव रचना धर्म को निश्चय संश्लिष्ट किये होगा। इसका प्रतिविम्बन हमें प्रेमचन्द की रचनाओं में सहजतः उपलब्ध होता है ।

शनैः शनैः विद्रोह का समवेत स्वर मुखरित होकर ब्रिटिश - साम्राज्यवाद के कंगूरे को झंकृत करने लगा, परिणामत साम्राज्यवाद पोषकों ने नित नव नवीना साम, दाम, दण्ड, भेद आदि नीतियों के अनुसरण, अनुपालन रीति से उस स्वर को मन्द करने का प्रयत्न किया । सामन्तवाद तथा सम्प्रदायवाद रूप दो अमोघ अस्त्रों का साहाय्य ग्रहण किया परन्तु सामन्तवाद का एक अंश पूर्ववर्ती प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन में स्व - सत्ता आत्मसात् कर चुका था, सम्प्रदायवाद रूप अस्त्राघात भी प्रभावहीन रहा क्योंकि इसके विरोध में जनमानस पहले से ही सजग था, मात्र एक भावना बलवती बन रही थी हम सभी एक एकत्व का यहाँ प्रसार"। युवाशक्ति उद्दाम हो चुकी थी । ब्रिटिश शासन की भेदनीति ने भारतीयों में अलौकिक चेतना का संचार किया । 1905 में लार्ड कर्जन ने अपनी हठधर्मिता वश जन भावना के विपरीत बंगाल को दो भागों में विभाजित कर दिया । जन आन्दोलन ने जन्म लिया । कांग्रेस ने भी बंगाल- विभाजन के विरोध में प्रस्ताव स्वीकार किया । कांग्रेसी नेता उस स्वदेशी आन्दोलन को बल न दे सके परन्तु उसने भारत समग्र को एक राष्ट्रीय

विचारधारा में आबद्ध होने के प्रेरणा अवश्य दी । बंग-भंग आन्दोलन की उग्रता से हताश ब्रिटिश शासन ने उसकी समाप्ति के लिए अति कठोर कदम उठाया - अत्याचार पूर्ण नीति । फलतः आन्दोलन शान्त न हो कर अपेक्षाकृत उग्रतर होता गया । इसकी अन्तिम परिणति उग्र राष्ट्रीय विचारधारा के सूत्रपात स्वरूप हुई, इसके संवाहक प्रमुख रूप में बालगंगाधर तिलक एवं अनुगमन करने वालों में मुख्य विपिन चन्द्र पाल एवं लाला लाजपत राय थे । इस उग्रदल का समर्थन कांग्रेस का उदार विचार पोषक वर्ग नहीं करता रहा, 1907 के सूरत अधिवेशन में स्पष्टतः दोनो विचारधारा में स्वतंत्र अस्तित्व में पहुँच गई । एक प्रकार से कांग्रेस में उदार दल का वर्चस्व स्थापित हो गया । तिलक को 1908 में पकड़कर बर्मा भेज दिया गया । संघर्ष का स्वर दब चला । पहले के संचित वेग से धारा डेढ़ दो बरस जैसे तैसे बहती रही और फिर रुक गयी । इस बंगभग आन्दोलन की राष्ट्रीय विचारधारा का प्रतिबिम्बन लेखक प्रेमचन्द की कृति " सोजे वतन" में

---

1. बंग देश - भूमि उद्भूत - जनक्रान्ति के
स्फुलिंग विकीर्ण वे हो गये शनैः शनैः,
बंगभंग का वह युग - निर्माण का-
जब था प्रकट स्पन्द प्राण - प्राण का, कर
दिया भारत की राष्ट्र - श्री समुच्छ्रिता ।

-{ कीर्ति - सेतुः पृष्ठ 52-53 - शिवशंकर त्रिपाठी }

2. कलम का सिपाही अमृतराय { पृष्ठ 153 }

परिलक्षित हुआ । सोजे वतन" (1908) देश प्रेम का पहला उबाल था ।
उसकी पृष्ठभूमि में बंग - भंग विरोधी स्वदेशी आन्दोलन था जिसने
हिन्दुओं और मुसलमानों दोनो को अपनी तरफ खींचा था । नवयुवकों
का आन्दोलन सरकारी दमनचक्र जिस गति में क्रूर होता, वह भी तीव्र
तर होता गया ।

राजनीतिक घटनाएं तीव्रता से एक के पश्चात् दूसरी ब्रिटिश शासन कांग्रेस
और भारतीय आन्दोलन को समानतः प्रभावित करती रही, किसी ओर
उनका प्रभाव शिववाहक तो किसी ओर अशिवकर । भारतीयों के लिए
प्रभाव अपेक्षाकृत कल्याणकर होता गया । सन् 1918 की अवधि - पर्यन्त
गांधी जी का अहिंसात्मक और नवयुवकों की उद्दाम - शक्ति का तीव्र-
तर उत्साह तत्कालीन शासन के लिए दिन प्रतिदिन अशिवकर होता जा
रहा था । उसी अवधि में साम्यवादी विचारधारा पोषित रूसी क्रान्ति
का प्रवर्तन भी भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक विचारों को प्रभावित करने
लगा । इसका स्पष्ट संकेत प्रेमचन्द के इस कथन से उपलब्ध होता है - "
इस सभ्यता को समाप्त करने वाली सभ्यता भी उत्पन्न हो चुकी है ।
वह है - साम्यवादी मार्क्सवादी सभ्यता जिसका उदय सुदूर पश्चिम में हो
चुका है और जो यहाँ भी बढ़ी आ रही है । जिसमें श्रम का महत्व
होगा । इसने महाजनवाद या पूँजीवाद की जड़ खोद कर रख दी है ।
जो दूसरों की मेहनत या बाप - दादा के जोड़े हुए धन पर रईस बना
फिरता है, वह पतित प्राणी है ।

---

1. कलम का सिपाही- अमृत राय - पृष्ठ -152

सन् 1914 से 1918 तक का समय भारतीय राजनीति - आन्दोलन को एक निश्चित दिशा-बोध का काल था । इस अवधि में ब्रिटिश सत्ता, नेशनल कांग्रेस के नीति नियामक विचारकों एवं सांस्कृतिक वैचारिक - तत्वो का द्वन्द बढ़ा । सांस्कृतिक - विचारधारा तथा वैदेशिक - सत्ता- विरोधी भाववाले कांग्रेस - दलीय जनों की चिन्तन - प्रक्रिया के सामंजस्य ने एक नवीन शक्ति को जन्माया । उस नवशक्ति के विधायक तत्वों में प्रमुख थे- कांग्रेस द्वारा शासन स्वायत्तता" की मॉग 1916 में "होमरूल लीग" की स्थापना तथा एनीबेसेन्ट और तिलक का ब्रिटिश- साम्राज्यान्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य" का संयुक्त समर्थन, ब्रिटिश शासन की ओर से, प्रथममहायुद्ध - काल में प्राप्त भारतीय सहयोग - साहाय्य पर भी, भारतीय जनभावना की आशा के प्रतिकूल माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार" की उद्घोषणा, उस उद्घोषणा के प्रति भारतीय नेताओं में असन्तोष - क्षोभ की अभिवृद्धि ने ब्रिटिश शासन विरोधी विचारधारा को अपेक्षाकृत अधिकाधिक तीव्रता प्रदान की , भारत में प्रबल होते राजनीतिक आन्दोलन की गति को अवरुद्ध करने के उद्देश्य से एक ही वर्षावधि में रोलेट एक्ट" "हण्टर कमेटी रिपोर्ट" का प्रवर्तन और प्रकाशन, इन दोनो माध्यमों से ब्रिटिश शासन ने सत्ता विरोधी नेताओं, कार्यकर्ताओं को "काला-पानी" का दण्ड तथा प्राण दंड तक के आदेश पारित करने की स्वच्छन्दता प्राप्त कर ली । इन घटनाचक्रों के संघटित - परिणाम स्वरूप 1918 की अन्तिम कालावधि ने आक्रोश, विक्षोभ, असंतोष, असहिष्णुता, स्वत्व - संरक्षणं, प्रतिकार एवं विद्रोही भावों को उत्तेजना की चरम सीमा पर पहुँचाया । ऐसी ही परि-

स्थितियों ने मोहन दास करमचन्द गाँधी ऐसे लोकनायक को अवतरित किया ।

सन् 1918 तक गाँधी जी भारत के राजनीतिक आन्दोलन को वर्चस्व से इतना सशक्त बना चुके थे कि उनका प्रत्येक कार्य- व्यापार भारतीय आन्दोलन का पर्याय रूप हो गया । यद्यपि उस समय भी आन्दोलन अथवा कांग्रेस का एक वर्ग उनकी विचारधारा से पूर्ण रूपेण सहमत न था तथापि उनका असहयोग आन्दोलन ब्रिटिश शासन के लिए चुनौती रहा । वह वस्तुतः गाँधी युग था, जिसमें प्रेमचन्द का रचनाकार व्यक्ति विकासो-न्मुख हुआ । 1919 तथा 1920 इस वर्षावधि में जहाँ एक ओर माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार के माध्यम से ब्रिटिश शासन ने कांग्रेस के नरमदलीय नेतृ-वर्ग को प्रश्रय देकर उसे विघटित कर अपना स्वार्थ साधना चाहा क्योंकि इसमें भारतीयों को कोई अधिकार न देकर प्रकारान्तर से संघ (संगठन) को ही विघटित करने का कुचक्र रचा गया, क्योंकि विभिन्न जाति और सम्प्रदाय वालों को पृथक्तः संरक्षण का प्रावधान निहित था। गाँधी का प्रभाव भारतीय राजनीति के क्षितिज पर प्रातः कालीन सूर्य - सदृश उदित होकर शनैः शनैः प्रखर - प्रखरतर चिन्तन - रश्मियों से जन समग्र की इयत्ता - संरक्षण का केन्द्र बिन्दु बन रहा था । 1914 से प्रारम्भ प्रथम महायुद्ध ने 1918 तक की अवधि में ब्रिटिश साम्राज्य को आर्थिक रूप से निर्ध-नता जनित घोरतम विभीषिका में पहुँचा दिया, परिणामतः भारत में उसका व्यापार भी प्रभावित होने से वंचित न रह सका । परिस्थिति

न्य व्यवसायाभाव ने समाज में निर्धनपन को जन्माया। गांधी जी ने इस परिस्थिति का भली भांति आकलन किया, भारतीय जन-मानस को आंग्ल सत्ता के विरोध में उत्प्रेरित करने अच्छा अवसर था। उन्होंने ग्रामीण जनता, प्रमुखत: किसानों में जनान्दोलन के प्रति जागरण उत्पन्न स्तदर्थ अपने विश्वस्त व्यक्तियों यहां तक कि जवाहर लाल तक को गांवों में किसानों के बीच पहुंचकर अपनी विचारधारा से अवगत कराने का दायित्व दिया। आशाजनक परिणाम हुए। कृषक समुदाय उनकी भावनाओं से प्रभावित हुआ, कारण गांधी का धार्मिक भावना एवं जन सामान्य के प्रति सहृदयता। बुद्धिजीवी, चिन्तक तो पूर्वत: राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हो ही चुके थे।

यद्यपि उस समय एक वर्ग ऐसा भी था जो साम्राज्यशाही की घोषणाएं स्वीकार्य मानता तथा गांधी की विरोधी भावनाओं को श्रेयस्कर नहीं समझता था, अर्थ कि उनके विरूद्ध भी एक वर्ग सचेष्ट रहा। तथापि गांधी रन्चमात्र भी विचलित नहीं थे। उनका सबसे बड़ा सम्बल था उनका आत्मबल एवं दृढ़-संकल्प। ब्रिटिश शासकों द्वारा अनेकांश दमन चक्र, दामनीति से त्रस्त भारतीय जनमानस राजनीतिक आन्दोलन में दिग्भ्रमित होता जा रहा था। गांधी के दृढ संकल्प उद्दाम क्रिया शीलता-सूत्रों पह पुनर्जीवन-प्राप्त होकर, आत्म संघर्ष, राष्ट्र संरक्षण, अन्याय प्रतिकार के लिए भारतीय जन-मन पुन: विक्षुब्ध उत्तेजित ही नहीं वरन् निर्णायक संघर्ष हेतु दृढ निश्चयी

बन गया। सम्पूर्ण देश प्रकारान्तर से गांधी का अनुगामी हो, राष्ट्रीय, अस्मिता की चिरन्तन धारा में सम्मिलित होने के लिए आकुल हो उठा। भारतीय जनमानस में जागृत राष्ट्रीय भावना, आत्म पौरूष की उभरती-ज्वाला को शमित करने की दृष्टि से प्रवर्तित "रौलेट बिल" का गांधी द्वारा विरोध, लागू होने पर उसको निरस्त करने के लिए उनके सत्याग्रह का उद्घोष शुभ-सूचक घटना थी। यद्यपि भारतीय नेताओं में एक सुविधा-भोगी वर्ग ने आंग्ल सत्ता की अनुकूलता प्राप्त कर गांधी के उद्घोषित सत्याग्रह पर एक प्रश्न चिन्ह लगाने की कुचेष्टा अवश्य की, तथापि जन-भावना द्वारा प्राप्त प्रबल सहयोग के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण देश में हिन्दू-मुसलमानों के सम्मिलित सहयोग-सद्भावना से 6 अप्रैल 1919 को हड़ताल हुई। इस समय भारतीय जनता ने उपवास रखकर आत्महित रक्षणार्थ ईश्वर से प्रार्थनाएं की। जनाक्रोश को क्रूरतापूर्वक असफल करने के लिए शासन द्वारा अपनाये जाने वाले साधनों ने प्रतिकूल प्ररिणति दी।

---

1. सुप्त थी जो मूर्च्छना क्षत- विक्षत, दुर्लास्य से
नैराश्य में पड़ राष्ट्र की युग विभासी चेतना
पाकर सुभग-आशा-किरण-ज्योति-कर्मण्य की-
गांधी-सुचेतनाधार-स्नेह-करूणा का, अविरत,
गति वरूणा का, मानव हृदय-अनुराग-स्पन्दन का
विद्युतोद्बलोक - पीड़ित - सत्ता - अभिवन्दन जो, कर
उठा धुंध - सा, निर्मय था दृष्टि - पथ,
राष्ट्रीय अभिव्यक्ति का ------------
(कीर्ति - सेतु: शिवशंकर त्रिपाठी/पृष्ठ 63)

जनता में क्षोभ बढ़ा, उसमें प्रतिकार की उद्दीप्त ज्वाल ने उसे हिंसात्मक दिशा की ओर अभिमुख कर दिया । अप्रैल 13 की जलियाँवाला बाग में जनरल डायर द्वारा एकत्रित निहत्थे निरपराध जन- समुदाय पर गोली चलवाना इसी की परिणति स्वीकारी जायेगी ।

सत्याग्रह आन्दोलन में हिंसात्मक स्वरूप की परिणति ने गांधी के मन को इस सीमा तक उद्वेलित कर दिया कि मन ही मन उन्होंने अपनी उस घोषणा को असमय, अपरिपक्व तथा किंचिद अदूरदर्शिता से अपनायी सोच स्थगित करना संगत माना । किन्तु इसका अर्थ यह कथमपि नहीं कि उनके प्रभाव में कोई कमी आयी अथवा भारतीय आन्दोलन की गति शिथिल हुई । प्रभाव दिन - अनुदिन बढ़ता गया । 1930 में हण्टर कमेटी रिपोर्ट" प्रकाशनोपरान्त एक बार पुनः जनाक्रोश को लोकनायक गांधी ने पुनः संजीवनी दी । वह तो पूरे जन सामान्य के लिए दिशा बोधक बन चुके थे । उन्होंने अब भारतीयों को तीव्र असहयोग आन्दोलन के लिए आवाहित किया । उनके प्रभाव की स्पष्टतः झलक तब प्रतिभासित हुई जब कलकत्ता कांग्रेस के विशेष अधिवेशन ने देशबन्धु दास सहित एक वर्ग वि- शेष द्वारा विरोध करने पर भी गांधी के असहयोग प्रस्ताव पर सहमति व्यक्त कर स्वीकृति दे दी । असहयोग आन्दोलन का स्वरूप अत्यन्त व्यापक होकर प्रकटा - विदेशी सामान, शासकीय विद्यालयों, महाविद्यालयों न्यायालयों का बह बहिस्कार, शासकीय सेवावृत्ति, उसके द्वारा प्रदत्त उपाधि आदि के परित्याग करने का विनिश्चय समाहित रहा । प्रस्तावगत निश्चयों

का देश के विचारकों ने स्वागत ही नहीं पूर्णतः अनुसरण एवं प्रतिपालन किया। गांधी की दृष्टि में असहयोग का अर्थ - अब एक शब्द इसके बारे में कि अगर हमारी मांगे पूरी नही होती तो हमें क्या करना होगा ? बर्बर तरीका तो लड़ाई का है फिर वह चाहे खुली लड़ाई हो चाहे गुप्त। इसे तो हमें काट ही देना होगा, अगर और किसी कारण से नहीं तो केवल इसलिए कि यह अव्यवहारिक है। अगर मै सबको इस बात का विश्वास दिला सकता कि यह चीज हमेशा हर हालत में बुरी होती है तो हमें अपने न्यायोचित उद्देश्यों में और जल्दी सफलता मिलती। हिंसा को तिलांजलि देने वाले किसी व्यक्ति या राष्ट्र में इतनी शक्ति आ जाती है कि फिर कोई उसका सामना नहीं कर सकता। लेकिन आज हिंसा के विरुद्ध मेरा तर्क शुद्ध व्यावहारिकता पर आधारित है - हिंसा बिल्कुल निष्फल है, ऐसी स्थिति में हमारे सामने केवल एक उपचार रह जाताहै- असहयोग। असहयोग आन्दोलन का व्यापक प्रभाव हुआ, शासन सत्ता भी आन्दोलित हुई। सम्पूर्ण भारत इस आन्दोलन में सम्मिलित हुआ। विदेशी वस्त्रों के तयाग और खद्दर ग्रहण राष्ट्रीय भावना का प्रतीक बन गया। समस्त देश एक नेतृत्व, एक कार्य - व्यापार, एक विचारधारा के सूत्र में आबद्ध होकर अजेय शक्ति के रूप में संगठित हो गया। जाति, सम्प्रदाय, धर्म, स्वार्थों की विभिन्नता एक बार तिरोहित हो चली। प्रत्येक चिन्तन शील इस आन्दोलन को गतिशील बनाने में अपने निजी हित को सहर्ष त्यागने लगा। असहयोग, आन्दोलन से प्रेमचन्द भी प्रभावित हुए।

---

1. कलम का सिपाही - अमृत राय - पृष्ठ 228

बिना न रहे । फरवरी 1921 में उन्होंने बीस वर्ष की शासकीय सेवा से त्यागपत्र दे दिया । उन्होंने आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी तत्कालीन पत्र- पत्रिकाओं में राष्ट्रीय विचारधारा पूर्ण, लेख, कहानियां एवं संपादकीय टिप्पणियों के लेखन - प्रकाशन द्वारा की । उनकी रचनाओं ने जनमानस को जागृत करने का कार्य किया । उनके विचारों पर गांधी को चिन्तनधारा प्रभावित थी - "सन् 16 के अन्त में भारतीय राजनीति पर गांधी जी का विधिवत प्रादुर्भाव हो चुका था, प्रेमचन्द गांधी जी की इस प्रगतिशील गति-विधि में पूर्णतः परिचित थे । सन् 20-21 के असहयोग में गांधी के आवाहन पर प्रेमचन्द ने अपनी बीस वर्ष की पुरानी नौकरी छोड़ दी । प्रेमचन्द की विविध राजनीतिक रचनाएं उस युग की राजनीति से प्रभावित हैं, जिसका संचालन गांधी जी कर रहे थे । असहयोग के स्वर से मुखरित इस युग में ही "प्रेमाश्रम" की रचना हुई ।

असहयोग आन्दोलन को सफल बनाने के लिए प्रत्येक वर्ग के चिन्तकों ने अपनी विचारधारा से सहयोग दिया, साहित्यकारों का सहयोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा । दुर्भाग्यवश, आन्दोलन के चरमसीमा पर पहुँचते ही "चौरीचौरा का हिंसात्मक काण्ड" घटित हो गया । अहिंसावादी गांधी के हृदय पर इसने प्रतिकूल प्रभाव डाला, उन्होंने आन्दोलन तत्काल स्थगित कर दिया । संगठित शक्ति असमय ही बिखर गई । जनमानस पर आन्दोलन के स्थगन का विपरीत प्रभाव हुआ, वह निराश होने लगी । दूसरी ओर 13 मार्च को गांधी जी गिरफ्तार करके छःवर्ष

- -

1. प्रेम चन्द घर में - श्रीमती शिव रानी देवी - पृष्ठ -93-94

के कारावास का दण्ड दिया गया । अर्थ यह कि आन्दोलन पूर्णतः स्थगित । उसके मुख्य दो परिणाम स्पष्टतः दृष्टिगत हुए - पहला यह कि कांग्रेस में "अपरिवर्तनवादी" तथा "परिवर्तनवादी" दो दल पृथक पृथक अस्तित्व धारण कर लिए । 1922 को गया कांग्रेस ने देशबन्धुदास "स्वराज्य - पार्टी" की स्थापना को श्रेय दिया, वह उस समय वह कांग्रेस सभापति थे । दूसरा यह कि आन्दोलन स्थगित होने से संगठित शक्ति का जो विखण्डन हुआ, उससे हिन्दू - मसलमानों को परस्पर मानसिक रूप से दूर कर दिया । हिन्दू - मुसलमानों की एकता विश्रृंखलित होने से देश साम्प्रदायिक - दंगों की खूनी होली खेलने लगा । यह स्थिति पाँच वर्षों - पर्यन्त (1922-1927) बनी रही । 1926 में स्वामी श्रद्धानन्द की एक धर्मान्ध मुसलमान द्वारा कर दी गई । क्रूर दमनकारी ब्रिटिश शासन इस स्थिति में मूक - दर्शक रहा, कारण यह तो उसकी कूटनीतिक व्यवस्था का एक अंग था कि भारत का हिन्दू - मुसलमान एकता सूत्र में न बंधने पाये । 1928 में "साइमन कमीशन" का प्रबल विरोध हुआ । आन्दोलन-कारियों का दमन करने के लिए शासन ने गोली तथा लाठी का सहारा लिया । इसी समय लाला लाजपतराय लाठियों के प्रहार से आहत होकर कुछ दिनों के पश्चात मृत्यु के ग्रास बन गये । शासन की दमन नीति ने भारतीय राष्ट्रीय लहर को अपेक्षाकृत अधिक

उत्ताल ही बनाया । इस दृष्टि से 1928 से 1930 तक की कालावधि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है।

काँग्रेस की सहिष्णु विचारधारा में भी परिवर्तन आया । कलकत्ता काँग्रेस में जवाहर लाल नेहरू एवं सुभाषचन्द्र बोस द्वारा " नेहरू – कमेटी रिपोर्ट" के आधार पर औपनिवेशिक – स्वराज्य की स्थापना सम्बन्धी प्रस्ताव को शासन नें अस्वीकार कर दिया। इसने राष्ट्रवादी काँग्रेस नेतृत्व को एक ओर झकझोरा तो दूसरी ओर एक दिशा निर्णय की प्रेरणा दी । 1929 में काँग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ । सभापति थे जवाहर लाल नेहरू । इस अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता की उद्घोषणा की गई । अब काँग्रेस का लक्ष्य "औपनिवेशिक स्वराज्य" की सीमा आक्रान्त कर पूर्ण स्वराज्य की देहली पर पहुँच उसकी प्राप्ति हेतु संघर्ष रत होना, हो गया । काँग्रेस का वास्तविक कार्य प्रस्तुतः लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य की घोषणा से ही प्रारम्भ हुआ । सन् 1930 की 26 जनवरी को देशवासियों को एक महत्त्वपूर्ण घोषणा पत्र पढ़कर सुनाया गया जिसके माध्यम से "पूर्ण स्वाधीनता" – हेतु संघर्ष एवं आँग्ल साम्राज्यशाही से मुक्ति – संकल्प का विनिश्चय कह जनता का आह्वान हुआ । जनता के आह्वान का आशातीत परिणाम हुआ, अभूतपूर्व सहयोग मिला, काँग्रेस ने राष्ट्रीय संस्था के निज स्वरूप प्रकटा, ब्रिटिश – सत्ता पर उसके संगठन, उसकेकार्य

---

1. काँग्रेस का इतिहास, भाग । : पट्टाभि सीतारामय्या×पृ0 288

कलापों की दिनानुदिन जुटती श्रृंखलाओं, अपरिमित जन सहयोग स्वाधी-नता की आवाप्ति के प्रति अटूट विश्वास अदम्य उत्साह की आक्रामक चेष्टा प्रभावशालिनी होने लगी । आतंकित होकर शासन की ओर से काँग्रेस को तथा उससे सम्बद्ध संस्थाओं को भी प्रतिबंधित कर दिया। सन् 30 के ही फरवरी मास में गांधी जी ने काँग्रेस - कार्यसमिति के अनु-मोदन पर अपने विश्वस्त सहयोगियों सहित सविनय अवज्ञा आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया । गांधी जी ने बारह मार्च को दाण्डी यात्रा पर प्रस्थान कर 5 अप्रैल को पहुँचकर नमक कानून भंग किया । व्यापकरूप से उन्हें समर्थन तथा सहयोग प्राप्त हुआ, उनकी प्रेरणा से जनसाधारण ने भी स्थान - स्थान पर नमक कानून भंग कर अपने उत्साह का परिचय दिया । गांधी जी की डाण्डी यात्रा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने हंस-वाणी के पृष्ठों का उपयोग किया । पहले किसी की समझ में न आया कि महात्मा जी क्या करने जा रहे है । मजाक भी उड़ाया गया । एक गवर्नर ने अपने खुशामदी टट्टुओं को जमा करके अपने दिल के फफोले फोड़ते हुए इस संग्राम को दुःखमय प्रहसन बतलाया । गवर्नर साहब को क्या मालूम था कि यह दुःखमय प्रहसन दो सप्ताह में ही आजादी का एक प्रचण्ड तूफान सिद्ध हो जायगा जिसे नौकरशाही की सारी संगठित शक्ति भी न रोक सकेगी । वह सब किया गया जो एक स्वेच्छाचारी शासन ऐसी परिस्थितियों में करता है । हमारे नेता चुन - चुनकर जेल भेज दिए गये अफसरों को नये - नये अधिकार दिये गये, वायसराय ने भी अपने स्वरक्षित अस्त्र निकाल लिए , यहाँ तक कि इस लू और

गर्मी में देवताओं को पर्वत शिखरों से दो एक बार उतरकर नीचे आना पड़ा, जो भारत के इतिहास में अनहोनी बात थी - लेकिन स्वराज्य सेना के कदम आगे ही बढ़े जाते है । जैसे बच्चे हार जाते है तो दाँत काटने लगते हैं, वही हाल नौकरशाही का हो रहा है । कहीं निहत्थी जनता पर डंडों और गोलियों की बौछार हो रही है, कहीं जनता में फूट डालने की कोशिश हो रही है । xxx फिल्मों पर रोक लगायी जा रही है । तार की खबरों का सेंसर हो रहा है । xxx न कोई कानून है न कायदा, न नीति, न धर्म । बस जिधर देखिए, लबड़धोंधों, एक घबराये हुए आदमी की बौखलाहट । xxx मगर हम इन बातों की शिकायत नही करते । इन्ही अन्यायों से तो हमारी विजय है। सन्निपात मौत के चिन्ह हैं । हम तो महात्मा जी की सूझ बूझ के कायल हैं । जो बात की, खुदा की कसम लाजवाब की । न जाने कहाँ से नमक कर खोज निकाला कि उसने देखते - देखते देश में आग लगा दी[1]। अर्थ यह कि गांधी युग ही प्रकारान्तर से प्रेम चन्द युग कहा जाना सर्वथ संगत है । प्रेमचन्द ने इस युग को खूब परखा तथा जीभर के जीया भी है। नमक आन्दोलन की लोकप्रियता, उसका सार्वजनीन - प्रभाव उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित हुआ । नमक में इन तूफानी दिनों में मुंशी जी अमीनुद्दौला पार्क में रहे । घर से लगा हुआ कांग्रेस का दफ्तर था । यानी आन्दोलन का हेडक्वार्टर

---

1. कलम का सिपाही : अमृतराय / पृष्ठ 457

और सामने अमीनुद्दौला पार्क । शहर के सारे जुलूस वहीं आकर खत्म होते थे और हर समय एक न एक मीटिंग का आयोजन रहता था । वहीं पर नमक बनता, वहीं पर विदेशी कपड़ो की होली जलती । कितनों को ही मुंशी जी ने अपने हाथों से खद्दर का कुर्ता टोपी पहना कर, पान का बीड़ा देकर, और उनकी पत्नी ने माथे पर तिलक लगाकर सामने पार्क में नमक बनाने के लिए भेजा ।

गांधी जी के इस बहिष्कार, आन्दोलन से न केवल प्रेमचन्द का व्यक्ति बल्कि उनका परिवेश भी पूर्णतः प्रभावित हो चुका था। उनका मन - मस्तिष्क सर्वतोभावेन क्रान्ति -विचारधारा में समाविष्ट होकर उसके वर्त-मान - भविष्य को किसी सुखावह रेखांकन के लिए प्रतिक्षण उत्सुक रहता उनकी पत्नी में भी सत्याग्रह की भावना पल्लवित हो चुकी थी । हजारों की संख्या में महिला स्वय सेविकाएं बहिष्कार- आन्दोलन को गति देने में सन्नद्ध हो गयीं । शिवरानी देवी जो अपने किसान अक्खड़, दबंग स्व-भाव के कारण इस बीच अपनी स्वयं सेविकाओं में काफी लोकप्रिय हो चुकी थी, अपनी टोली की कप्तान बनायी गयीं । × × × आखिर नवम्बर की 8 9 तारीख को वह पिकेटिंग करते हुए पकड़ ली गयीं । × × × ।। तारीख के अपने खत में उन्होने ﴾प्रेमचन्द ने﴿ राजेश्वर बाबू ﴾कान्हजी﴿ को इसकी खबर देते हुए लिखा-" तुम्हारी मौसी 9 तारीख को एक विदेशी कपड़े की दूकान पर पिकेटिंग करते हुए पकड़ ली गई । मैं कल उनसे जेल में मिला और हमेशा की तरह प्रसन्न पाया। उन्होने हम

---

1. कलम का सिपाही - अमृत राय - पृ०-458

लोगों को पछाड़ दिया और मैं अब अपनी ही आँखों से छोटा लग रहा है ।" आन्दोलन में दिनानुदिन शासन द्वारा चल रहे कठोर दमन चक्र के विपरीत तीव्रतर होता रहा । विवश होकर शासन ने घुटने टेके एवं इरविन के साथ गांधी जी का विचार विनिमय हुआ जिसे इरविन गांधी समझौता कहा गया । उसके पश्चात् आन्दोलन गांधी जी ने स्थगित कर दिया ।

तत्पश्चात् गांधी जी द्वितीय गोलमेज परिषद में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करने इंग्लैण्ड गये, वहाँ अछूतों के प्रतिनिधित्व की पृथकता पर अपना विरोध प्रकट किया, हाथ असफलता, निराश वापस आये । उनके देश आगमन से पूर्व अनेक कांग्रेसी जेल भेजे जा चुके थे, पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए उद्घोषणा हुई । गांधी जी और सरदार बल्लभ भाई पटेल गिरफ्तार हुए । आन्दोलन पुनः तीव्रतर होने लगा । इस बार देशी रियासतों से भी तमाम कार्यकर्ताओं का भी सहयोग प्राप्त हुआ । मैकडानल्ड द्वारा पृथक निर्वाचन की घोषणा के विरोध में गांधी जी के 8 मई 1933 से इक्कीस दिन उपवास का विनिश्चय जान सरकार ने उन्हें मुक्त कर दिया । समग्रतः आकलन से स्पष्ट होता है कि 1933 से 35 तक का काल कांग्रेस एवं उसके द्वारा संचालित तमाम आन्दोलनों को अप्रभावी करने के लिए कठोरतम दमनचक्र के माध्यम से

ब्रिटिश शासन ने भारतीय आत्मबल को घर्षित करने का पूर्ण किन्तु असफल प्रयास किया । नेताओं की गिरफ्तारी के साथ साथ समाचार पत्रों के स्वर को भी मन्द करने के लिए उनके स्वामिवर्ग से विश्वस - नीयता स्वरूप जमानते माँगी गयी । जमानत न देने पर प्रेस के अधि- ग्रहण तक करने का प्रावधान किया गया। प्रेमचन्द का हंस भी इस प्राव- धान से प्रभावित हुआ । जैनेन्द्र को लिखित एक पत्र में उन्होने यह तथ्य उजागर किया था । -" हंस" के छह अंक निकल चुके हैं । सितम्बर और अक्टूबर में प्रेस और पत्रिका जमानत मांगे जाने केकारण बन्द पड़े हैं । प्रेस के आर्डीनेंस उठ जाने पर फिर निकले हैं ।

विवेचन- आकलन से संकेतित है कि प्रेमचन्द का रचनाकार व्यक्ति प्रकारान्तर से भारतीय स्वातंत्र्य - आन्दोलनरूप यज्ञानुष्ठान के पुरोधा गांधी जी के युग में जीया तथा तत्कालीन परिवेश में रमकर अपनी रचना- धर्मिता का उसने निर्वाह किया । प्रेमचन्द का निधन, 1936 में 8 अक्टूबर को हुआ, उस समय राष्ट्रीय - आन्दोलन पूर्ण जवानी पर था। वह सर्वतोभावेन राष्ट्रीय चेतना से सम्बद्ध रहे यही कारण है कि उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय भावों का सशक्त प्रतिमूर्तन उपलब्ध होता है । वह उस समय जागृत राष्ट्रीय चेतना की अजस्रधार में निमग्न होकर न केवल रचनाधर्मिता में उसका प्रभाव स्वीकार अंकित करना कर्तव्य माने अपितु वह सामान्य नागरिक के रूप में उस चेतना को स्वर देकर जन - मानस से गूंजा समवेत मंत्रोच्चार-स्वरूप, स्थापित करने में अग्रगण्य रहे ।

---

1. प्रेम चन्द चिट्ठी पत्री - अमृत राय - पृष्ठ संख्या-458

प्रेमचन्द का रचनाकार व्यक्ति सन् 1905 में देवस्थान, रहस्य कृति के साथ अवतारित होकर, रचनाधर्मिता का कुशल पथी बन 1936 में "योगदान" द्वारा भारतीय सामाजिक - जीवन की परम्परागत रूढ़ियों का मूल्य - सापेक्ष प्रतिविम्बन के साथ अवसान को प्राप्त हुआ। प्रेमचन्द का यह स्पयित रचनाकार व्यक्ति दशकत्रय के राजनीतिक - सांस्कृतिक विविध उदय अवसान अनुवर्तन - विकास - प्रतिभास, विश्वास, आश संत्रास, और अभ्युत्थान - पतन, परिवतर्नन - अनुवर्तन, संघटन-विघटन आदि से निर्मित हुआ। कहीं उदय के अवसानोन्मुख स्थिति का आकलन कर उसमें प्रेमचन्द की रचनाधर्मिता ने संद्यः प्रेरणा- प्रतिभास विकीर्ण करने की चेष्टा, कहीं अभ्युत्थान - पतन के सामंजस्य स्वरूप परिवर्तन को लोकाभिप्सित दिशा बोध संकेतित करने का प्रयास किया, तो कहीं संत्राय के विषम - कुहासाच्छन्न तमस् पर विजय हेतु आशाप्रेरित विश्वासोद्वेलित आत्मशक्ति - जागरण का मंत्र वाचन किया एवं इन सभी के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने राजनीति की उद्दाम तरंगों को संस्कृति के अमृतरस सिन्धु से अमरता ग्रहण करने का अनुबन्ध करके चिरन्तन सत्य को प्रतिष्ठा दी। हम आगे इसी परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द के रचनाकार व्यक्ति युगीन सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थिति पर दृष्टि क्षेपण करेंगे।

प्रेमचन्द का साहित्य को यदि भारत के स्वातंत्र्य पूर्व तीन दशकों (1905-1935) के सामाजिक - सांस्कृति एवं राजनीतिक चिन्तनधारा का प्रसस्त, यथातथ्यात्मक ऐतिहासिक अभिलेख की संज्ञा से अभिहित

किया जाय तो असंगत न होगा। समाज तथा साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । समाज की विविध गतिविधियों का आकलनात्मक अंकन कर रचनाकार, उनमें अन्तर्निहित लोकेषणा के भावों को उजागर एवं जनमानस को दिशाबोध दे एक समग्र सामासिक संस्कृति की निर्मिति का आधार प्रस्तुत करता है, समाज उस परिप्रेक्ष्य में विकाभिमुखी चिन्तन प्रक्रिया को ग्रहण करने में प्रयत्नशील होता है । अर्थ यह कि प्रेमचन्द का रचनाकार व्यक्ति ने युगीन परिस्थितियों को न केवल अनुभव किया अपितु उसमें रमा, उसके जीवन की प्रबल-जिजीविषा प्रतिष्ठित करने का अनुष्ठान कर उसे समुचित रूप से भोगा जीकर उसके शिव-अशिव का विवेचन करके सांस्कृतिक - सामासिकता के तत्व को समाज समग्र के सामने प्रस्तुत कर दिया । युग - चेतना को अपनी रचनाधर्मिता में रचना कौशल से आत्मासातीकरण करना ही किसी भी रचनाकार का प्रतिष्ठा बोध है । वह बोध प्रेमचन्द की रचनाओं में सहजतः प्रतिच्छवित होता है । वह युग था जब एक ओर असीम वैभव सम्भार तो दूसरी ओर घोर अभाव ग्रस्तता, जीवन यापनोपकरण- हीनता से आक्रान्त असहाय जन का करुण क्रन्दन, रोदन, चीत्कार, एवं हाहाकार । प्रेमचन्द ने समाज में जड़ीभूत इस वैषम्य को अपने साहित्य में अंकित कर सामासिक क्रान्ति के लिए पथ प्रशस्त किया । उनके साहित्य का अनुशीलन हमें उनके इस दृष्टिबोध को सहज ही संकेतित करता है । समाज में परम्परित वर्ण व्यवस्था, अस्पृश्यता, वैधव्यता का करुण -

विलपन, गणिका का हीन - विलास, बाल तथा असमान विवाह, दूषित वैवाहिक रीति, धार्मिक - असहिष्णुता, संकुचित, विचारधारा पोषित सांप्रदायिक उन्माद एवं अन्धविश्वास आदि के प्रति तीव्र आक्रोश उपलब्ध है। सामाजिक विषमता - वर्ग विशेष द्वारा ऐश्वर्य भोग, दूसरी ओर अभावग्रस्त वर्ग का करूण जीवन उनके आस्तिक भावों तक आघातित करता, परिणामत: वह ईश्वर के अस्तित्व पर भी शंका कर बैठते। एक बार बातचीत के दौरान जैनेन्द ने प्रेमचन्द से कहा "आप परमात्मा में जो विश्वास नहीं करते। प्रेमचन्द जी ने गम्भीर होकर कहा - जैनेन्द्र मैं कह चुका हूँ, मै परमात्मा तक नहीं पहुँच सकता। मै उसका विश्वास नही कर सकता। कैसे विश्वास करूँ? जब देखता हूँ बच्चा बिलख रहा है, रोगी तड़प रहा है। यहाँ भूख है, क्लेश है, ताप है। वह ताप इस दुनिया में कम नहीं है। तब इस दुनिया में मुझे ईश्वर का साम्राज्य नहीं दीखे तो यह मेरा कसूर है? हम समाज के साथ हैं, समाज में हैं।

समाज यदि रचनाकार के रचनाधर्म - निर्वहन की उपकरण - भूमि है, उसके लिए परिस्थिति - जन्य लोकमंगलभूत घटना एवं तत्सापेक्ष प्रेरणा जुटाता है तो रचनाकार की सृष्टि समाज को चिरन्तन - आस्था - उद्भूत स्थायित्व - निमित दिशाबोध उपास्थत करती है, इसीलिए समाज रचनाकार का उपजीव्य तथा रचनाकार समाज का जीवन है। प्रेम-चन्द सामाजिक चेतना के रचनाकार रहे हैं, उनकी चेतना सामाजिक सौमनस्य के प्रति जागृत रहकर, उसमें आभासित शिव - अशिव व्यापारों

के " अर्थेति" को न केवल देखा, परखा वरन् उसकी सामंजस्यात्मक श्रृंखला को दृढ करने के सूत्र भी उसने प्रतिस्थापित किया । प्रतिस्थापित सूत्रों का व्याख्यान हमें "सेवासदन" और "गोदान" औपन्यासिक कृतियों में उपलब्ध है । प्रेमचन्द युगीन समाज शोषण संस्कृति से इतना त्रस्त था कि ग्रामीण जन महाजनी पूँजीवाद की विष वेलि - छाया में अपना श्रम पौरूष सुखाकर निष्प्राण होता जा रहा था । अर्थ यह कि एक सर्वथा नयी संस्कृति विकास को प्राप्त कर चुकी थी, वह "टका" संस्कृति - समाज में एक नये साम्राज्यवादी - सुखद छाया- तले एक वर्ग विशेष का विलास - लास में उपकरण जुटा रही थी, प्रेमचन्द ने इसे महाजनी सभ्यता नाम से अभिसंज्ञित किया । उन्होंने लिखा- धन के लोभ ने मानव-भावों को पूर्णरूप से अपने अधीन कर लिया था ।है कुलीनता और शराफत गुण और कमाल की कसौटी पैसा और केवल पैसा है । इस पैसे ने आदमी के दिलों-दिमाग पर इतना कब्जा जमा लिया है कि उसके राज्य पर किसी और से आक्रमण करना कठिन दिखाई देता है । इस सभ्यता का दूसरा सिद्धान्त है, "बिजनेस इज बिजनेस"- "व्यवसाय", व्यवसाय है । उसमें भावुकता के लिए गुंजाइश नहीं । × × समाज में आ गये बुरे विचार, भाव और कृत्य दौलत की देन है । पैसे के प्रसाद हैं । महाजनी सभ्यता ने इसकी सृष्टि की है । वहीं इनको पालती है और वही यह भी चाहती है कि जो दलित, पीड़ित, और विजित हैं, वे इसे ईश्वरीय विधान समझकर अपनी स्थित पर सन्तुष्ट रहे । उनकी ओर से तनिक

भी विरोध विद्रोह का भाव दिखाया गया तो सिर कुचलने के पुलिस हैं, अदालत है, काला पानी है। आप शराब पीकर उसके नशे से नहीं बच सकते। आग लगाकर चाहें कि लपटें न उठें असम्भव है। पैसा अपने साथ वह सारी बुराइयां लाता है जिन्होने दुनिया को नरक बना दिया है। इस पैसे को मिटा दीजिए, सारी बुराइयाँ अपने आप मिट जायेंगी। इस प्रकार की दूषित अर्थव्यवस्था ही समाज को अनेकानेक - समस्याओं से विश्रृंखलित कर देती है। प्रेमचन्द एक जागृत, संवेदनशील रचनाकार होने के कारण इस परिस्थिति का सम्यक, आकलन एवं इस महाकलुष के प्रक्षालनार्थ लिखा- अब एक नयी सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा है जिसने इस नाटकीय महानवाद या पूँजीवाद की जड़ खोद कर फेंक दी है। जिसका मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है राज्य और का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है। x x x निस्सन्देह इस नयी सभ्यता ने व्यक्ति का परम तंत्र्य के पंजे, नाखून और दाँत तोड़ दिए हैं। उसके राज्य में अब एक पूँजीपति लाखों मजदूरों का खून पीकर मोटा नही हो सकता। x x x जहाँ धन की कमी वेशी के आधार पर असमानता है जहाँ ईर्ष्या, जोर जबर्दस्ती, बेइमानी, झूठ, मिथ्या, अभियोग, आरोप वेश्यावृत्ति, व्यभिचार और सारी दुनिया की बुराइयां अनिवार्य रूप से मौजूद हैं।

---

1. प्रभात (ग्वालियर)/ पृष्ठ 8

2. महाजनी सभ्यता : प्रेमचन्द / पृष्ठ 261-62

समाज की यह बाह्य विपन्नता का मूल कारण साम्राज्यवादी-पूँजीवाद की त्रासदी, तज्जनित, प्रान्तरिक, विक्षोभ, उसके निराकरण - हेतु अनखोजा आधार के साथ सामाजिक परिवेश का रूढ़िवादी-परम्पराएं अन्धविश्वासों द्वारा दूषित होना । ये परम्पराएं थीं । बाल - विवाह असमान तथा वृद्ध विवाह एवं स्त्री शिक्षा प्रति पुरातन विचारधारा का मोह । सामाजिक परिवेश की निश्छलता के लिए समाज सुधार की दिशा में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की । संकीर्णता की सीमा से निकलकर व्यापक राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि बोध के लिए प्रयास करने वालों में स्वामी दयानन्द के अतिरिक्त स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ प्रमुख थे । प्रेमचन्द का रचनाकार - व्यक्ति जब विकासोन्मुख होने लगा, उस समय तक आर्य समाज की पूर्णतः प्रतिष्ठा हो चुकी थी । स्थान - स्थान पर विभिन्न शाखाएं प्रतिस्थापित होने लगी थीं । आर्यसमाज का प्रथम और प्रमुख प्रयास स्त्री समाज को विकासोन्मुख करना था । रूढ़िवादिता से आक्रान्त हिन्दू -समाज में परम्परित विधवा प्रपीडन के विरोध में आन्दोलन प्रवर्तित कर विधवा को विवाह करके पुनर्जीवन व्यतीत करने का अवसर देना एक उद्देश्य था । पर कोटिशः प्रयास सफलता न दे पा रहे थे । परिणामतः आर्य समाज द्वारा विधवा - आश्रम, नारी संस्थान तथा अनाथाश्रमों की स्थापना करने का क्रम प्रारम्भ हुआ था। रचनाकार प्रेमचन्द पर इस परिवेश का पूर्ण प्रभाव पड़ा । वह आर्य समाजी

दृष्टिकोण में भारतीय - समाज का श्रेयस् देखते थे । उनके उपन्यासों में विधवा- आश्रम, अथवा सेवासदन की स्थापना का उल्लेख इसी विचारधारा की पुष्टि करता है । प्रेमचन्द सामाजिक सुधारों के प्रति आर्य समाज एवं स्वामी विवेकानन्द की विचारधाराओं से प्रभावित रहे । उन्होने लिखा है -

स्वामी जी सामाजिक सुधारों के पक्के समर्थक थे पर उसकी वर्तमान गति से सहमत न थे । उस समय समाज सुधार के जो यत्नकिए जाते थे वे प्रायः उच्च और शिक्षित वर्ग से ही सम्बन्ध रखते थे । पर्दे की रस्म, विधवा- विवाह, जाति बंधन - यही इस समय की सबसे बड़ी समस्याएं हैं, जिनमें सुधारहोना बहुत ही जरूरी है और सभी शिक्षित वर्ग से सम्बन्ध रखती हैं । स्वामी जी का आदर्श बहुत ऊँचा था - अर्थात निम्न श्रेणी वालों को ऊपर उठाना, उन्हे शिक्षा देना और अपनाना। वह लोग हिन्दू जाति की जड़ है और शिक्षित वर्ग उनकी शाखाएं । केवल डालियों को सींचने से पेड़ पुष्ट नहीं हो सकता । उसे हरा - भरा बनाना हो तो जड़ को सीचंना होगा ।[1]

युगीन विचारधारा इस प्रकार की सुधारवादी दृष्टि पर पूर्णतः नहीं तो अधिकांशतः प्रभावी थी । रूढ़िग्रस्त परम्परावादी समाज उसको

---

1. कलम का सिपाही : अमृतराय / पृष्ठ 100 -101

श्रेयस्कर नही मान पा रहा था । मूल कारण था - अशिक्षित ग्राम्य समाज की अपरिपक्व विचारधारा एवं शिक्षित समाज का आन्तरिक दौर्बल्य । परम्परावाद से ग्रस्त तत्कालीन समाज में विरोध - भय से आक्रान्त सुधारवादी दृष्टि को व्यापक रूप प्रदान करने का साहस समाज सुधार समर्थकों में नही आ पा रहा था । सुधारवादी विचार-धारा के लिए प्रतिमूर्त रूप धरना असम्भव सा ही प्रतीत होता रहा । सिद्धान्त को व्यवहारिक रूप प्राप्त होना दुष्कर । समग्रतः आकलन का परिणाम यह रहा कि समाज प्र-कारान्तर से दो वर्गों में विभक्त था। एक परिष्कृत दृष्टिकोण द्वारा नवीन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा हेतु प्रयत्नशील जनों का तथा दूसरा परम्परावादी अशिक्षित जनों का । दोनो वर्ग अपनी विचारधारा में सामन्जस्य स्थापित करने में अक्षम प्राय: संघर्ष भावी बने रहे । समाज के इस परिवेश का चित्रण प्रेमचन्द का रचनाकार व्यक्ति ने अपनी रचनाधर्मिता में समाविष्ट किया है । उनकी रचनाओं में हमें यह भी स्पष्टतः उपलब्ध होता है कि राष्ट्रीय अस्मिता की आधारशिला परिवार विशृंखलित होने लगा था । आर्थिक विषमता तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाववश भारतीय समाज संयुक्त परिवार को अक्षुण्ण रखने की शक्ति का ह्रास कर रहा था । परिणामतः शनैः शनैः संयुक्त परिवार के विघटन से अनेक विषम समस्याएं समुप-स्थित होती रहीं - यथा राष्ट्र की शक्ति कृषक की सम्पत्ति का विभाजन, पारस्परिक प्रेम में ह्रास का प्रवेश और सबसे हानिकर था।

नारी - समाज के संरक्षण सम्पोषण पर आघात । मर्द भी कुछ भी करे कहीं आये कहीं जाये, दिन - रात रण्डी के कोठे पर बैठा रहे, औरत चूँ भी नहीं कर सकती । औरत ने घर के बाहर पैर निकाला नहीं कि शुबहे ने मर्द का दामन पकड़ा और उसके दिमाग का पारा चढ़ा चाहे फिर बेचारी औरत अपना दिल बहलाने के लिए अपनी सहेली के घर ही क्यों न गई हो । मर्द की अदालत में फिर उसकी कोई सुनवाई नही है । जो कुछ अनाप-शनाप उसके मुँह में आयेगा, कहेगा । औरत को मुँह खोलने की भी इजाजत नहीं है ।अपनी सफाई में कुछ कहना भी बे-अदबी है और इसकी सजा यह है कि उसको आधीरात को बिल्कुल बेसहारा अपने घर से निकाल दिया जाता है जहाँ जी चाहे जो जी में आये करें । लेकिन सवाल तो यह है कि कहाँ जाय, क्या करें । कोई उसका पुरसहाल नहीं होता ।[1] नारी सम्मान की भावना का लेश भी अत्यल्प था ।

उन्नीसवी शताब्दी के समाजसुधार आन्दोलन की दृष्टि सामाजिक इयत्ता को आधारभूत "नारी" जीवन की विविध समस्याओं की ओर भी आकृष्ट हुई । उसे शिक्षित, जाग्रत बनाकर उसको "स्व" निज के अभिज्ञान संरक्षण निमित्त सचेष्ट किया गया । फलस्वरूप प्रेमचन्द युगीन नारी समाज महात्मा गाँधी की प्रेरणा से राजनीतिक - सोच

---

1. कलम का सिपाही : अमृत राय / पृष्ठ 186

राष्ट्रीय चेतना से अभिभूत होकर उसने आत्मविश्वास को दृढ़ किया। ऐसे सन्दर्भों को रचनाकार प्रेमचन्द ने परिस्थितिजन्य वातावरण के परिप्रेक्ष्य में संजोया है ।

स्व० पंडित जवाहर लाल नेहरू ने " हिन्दुस्तान की कहानी" में उल्लेख किया है - जमीन के मालिकों का एक नया वर्ग सामने आया - एक ऐसा वर्ग जिसको ब्रिटिश सरकार ने खड़ा किया था जो बहुत कुछ उस सरकार से मिला, जुला था ।[1] पूँजीवादी साम्राज्य व्यवस्था के कारण भारतीय उद्योग धन्धों मुमुर्षप्राय हो चुके थे, जिस कारण जीवन निर्वाह का साधन एक मात्र कृषि हो गया । भूमि पर भी अधिभार वृद्धि हुई । उधर संयुक्त परिवार विघटित होकर विभक्त हुआ तो भूमि भी विभाजित हो गई । कृषि परम्परागत प्राचीन ढंग से ही होती थी परिणाम यह कि उपज में अभिवृद्धि असम्भव होने से ग्रामीण -जीवन का आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्तर निम्न से निम्नतर होता रहा । यही आर्थिक ह्रास विभिन्न सामाजिक समस्याओं को जन्माता एवं जन्मी सामाजिक नयी नयी समस्याओं के कारण आर्थिक संकट भी बढ़ता रहा । किसान बेचारा अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोपों का भी शिकार रहता था। उपज कुछ होती न थी, उधर लगान वसूली के नियम कड़े थे । पहले तो फसल का कुछ अंश ही लगान के रूप में लिया जाता था किन्तु अब अंग्रेजी पद्धति में लगान नकदी के रूप में अनिवार्य

---

1. हिन्दुस्तान की कहानी / पृष्ठ 374

होगया । फसल चाहे हो या न हो , लगान अवश्य सिर पर पड़ता था । लगान वसूली निर्दयता से होती थी और उसमें बेइमानी होती थी सो अलग । जमींदार के करिंदे अलग मनमानी करते थे[1]।

प्राचीन सामन्तवादी परम्परा पर पूँजीवादी साम्राज्यवाद छा गया था पूँजीवाद चरमोत्कर्ष की ओर ब्रिटिश शासन व्यवस्था प्रभूत नौकरशाही का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा था। इस स्थिति में जमींदारी का भी अस्तित्व समाप्त प्राय अथवा निर्बल हो चुका था - बेचारे जंमीदारों की दशा उस रखैल स्त्री की सी हो रही है जिसके यौवन की बहार अब चल चलाव पर हो । एक समय था जब उसका आशिक उस पर प्राण न्योछावर करता था, उसकी एक- एक अदा पर जान कुर्बान करता था, एक - एक नखरे पर लोट-पोट हो जाता था, एक- एक चितवन पर कलेजा थाम लेता था, लेकिन यौवन के उतार के साथ वह दिन और वह रातें सपना हो गयी । अब बेचारी तरह तरह के रंग भरती है आठों पहर मिस्सी सुरमे के पीछे पड़ी रहती है, वसीकरण के जंतर- मंतर करती रहती है लेकिन भौंरा प्रेमी अब भागा भागा फिरता है । न वह पराग रह गया है न वह रस, फिर नीरस फूल उसके किस काम का । अब तो यह जीवन और पट्टी पर सिर रखकर रोना है । [2]

---

1. प्रेमचन्द और उनका गोदान : कृष्णदेवझारी / पृष्ठ 10

2. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही - अमृतराय / पृष्ठ 547

धन वैभव पर वर्ग विशेष का एकाधिकार समाज की अर्थ - व्यवस्था को पूर्ण अस्त व्यस्त और एक पक्षीय बना रखा था। श्रमजीवी वर्ग तथा किसान सम्पत्ति वालों की कृपा के लिए सदा लालायित, उनके पास भिक्षुक के समान हाथ जोड़े गिड़गिड़ाने पर भी लाभान्वित न हो पाते प्रेमचन्द ने राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता शीर्षक लेख में लिखा - "सम्पत्ति ने मनुष्य को क्रीतदास बना लिया है। उसकी सारी मानसिक, आत्मिक और दैहिक शक्ति केवल सम्पत्ति के संचय में बीत जाती है मरते दम भी हमें यही हसरत रहती है कि हाय इस सम्पत्ति का क्या हाल होगा। हम सम्पत्ति के लिए जीते हैं और उसी के लिए मरते हैं। हम विद्वान बनते हैं सम्पत्ति के लिए गेरूए वस्त्र धारण करते हैं। सम्पत्ति के लिए। घी में आलू मिलाकर क्यों बेचते हैं? दूध में पानी क्यों मिलाते है? भाँति- भाँति के वैज्ञानिक हिंसा - यंत्र क्यों बनाते हैं? वेश्याएं क्यों बनती हैं और डाके क्यों पड़ते हैं? इसका एक मात्र कारण सम्पत्ति है। जब तक सम्पत्तिहीन समाज का संगठन न होगा, जब तक सम्पत्ति व्यक्तिवाद का अन्त न होगा, संसार को शान्ति न मिलेगी।[1]

शोषण का व्यापार अपनी सीमा पर था किसान उससे पूर्णत: त्रस्त।

---

1. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही - अमृत राय /पृष्ठ 547

किसान तथा जमींदार दोनो के बीच मुफ्तखोरों की एक सशक्त विशाल जमात पूर्णरूप संगठित हो चुकी थी । उसके शोषण व्यापार से किसान निरन्तर निर्बल धनहीन होता जा रहा था। उसमें अपनी समस्याओं के निराकरण हेतु सामूहिक प्रयास का अभाव था प्रेमचन्द ने संकेत किया है " किसान इस लिए तबाह नहीं है कि वह साक्षर नही है, बल्कि इस लिए कि उसको जिन दशाओं में जीवन का निर्वाह करना पड़ता है उनमें बड़ा से बड़ा विद्वान भी सफल नही हो सकता । उनमें सबसे बड़ी कमी संगठन की है। जिसके कारण जमींदार, साहूकार, अहलकार सभी उस पर आतंक जमाते हैं लेकिन अगर उनमें कोई संगठन करना चाहे, जिनमें वे इन भेड़ियों के नख और पंजों से बचें तो उस पर तुरन्त राजद्रोह का और हिज मेजिस्टी की प्रजा में विद्वेष पैदा करने का इलजाम लग जायगा और उसे जेल की हवा खानी पड़ेगी । किसान लाख साक्षर हो जाय, जब तक वह संगठित नहीं होता, जब तक उसे अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं होता जब तक वह इन समुदायों का मुकाबला नहीं कर सकता, उसका जीवन कभी सुखी नही हो सकता ।[1]

अन्ततः युग की सुधारवादी दृष्टि किसानों के हो रहे शोषण तथा उनकी दयनीय स्थिति पर भी गई और शोषण अत्याचार के विरोध में संगठन प्रादुर्भूत हुए। जमींदार शोषकों के विरोध में किसानों ने आवाज

---

1. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही - अमृत राय / पृष्ठ 549

उठाई तथा गाँवों में ऐसी समितियों, संगठनों के निर्माण हुए जो कृषक - विरोधी नीतियों, अत्याचारों के विरोध में संघर्ष करने के लिए कृषक समुदाय को सचेष्ट किया । कांग्रेस नेताओं का भी नेतृत्व प्राप्त हुआ और संयुक्त प्रान्त में लगानबन्दी आन्दोलन का सूत्रपात किया गया ।

भारत अति प्राचीन काल से धार्मिक आस्था की भूमि रहा है । धार्मिक आस्था के मुख्य अवयव थे - अवतारवाद, मूर्तिपूजा, कर्म-काण्ड एवं धार्मिक अनुष्ठान । यद्यपि उन्नीसवी शताब्दी में प्रवर्तित अनेक सुधारवादी आन्दोनलों द्वारा इस ओर दृष्टिपात किया गया तथा इन्हे समाप्त कर देने के लिए प्रयास भी हुए, तथापि प्रेम-चन्द युगीन भारतीय समाज पूर्वतः प्रचलित धर्म परम्पराएं प्रचलित रहीं । पूरा समाज धर्म के नाम पर तथाकथित पंडे- पुरोहितों के चंगुल में फंसकर शोषित होता रहा । इतना अवश्य उल्लेख्य है कि तत्का-लीन शिक्षित समाज धर्म पोषित- अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों का विरोध अवश्य करता किन्तु अशिक्षित, प्रमुख रूप से ग्रामीण समाज उन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के प्रति अनास्थावान बनना घोर पाप तथा जीवन के लिए अनिष्टकर मानता । उनकी मानसिकता में परिवर्तन लाना कठिनतम कार्य था । समाज में धर्म के ठेकेदारों द्वारा हो रहे अन्यायों आडम्बरों, ऊँच - नीच एवं छूत - अछूत से धर्मभीरू मानसिकता की मूल-भावना पर प्रहार अवश्यक था । प्रेमचन्द जी ने सोचा - "समाज

का यह विधान किसने किया ? आज भी समाज को सुधारने में सबसे बड़ी बाधा कौन है ? किसके चलते हिन्दू समाज में नारी की यह हीन दशा है ? × × × बिना हाथ पैर हिलाए दूसरे की कमाई पर हलवा पूरी जीमनेवालों की यह जो अक्षौहिणी साधु- महात्माओं के के रूप में घुन की तरह हमारे समाज को खा रही है । वह कौन लोग है? दण्ड कमण्डल लेकर सरल विश्वासी जनता को ठगने वाले कौन है[1]?

उस युग में धार्मिक आस्था वस्तुत: एक छलना थी, जो मोहक बनकर सहल हृदय सामान्य जन को अनायास आत्मविश्वास के बल पर वशीभूत करती तथा दोहक बनकर उसके लिए विविध बाह्याडम्बरों के माध्यम से जीवन की सुखमयता का प्रलोभन उपस्थित कर, उसके धन वैभव का हरण कर रही थी । छुआ-छूत अथवा छूत अछूत का अभिशाप भी इसी मोहक - छलना का एक अंग था। इसका लाभ उठाकर ब्रिटिश शासन ने इसीलिए द्वितीय गोलमेज सभा में अछूतों को हिन्दू समाज से पृथक करने की योजनान्तर्गत उनके पृथक निर्वाचन की घोषणा कर दी । इस पृथकतावाद के समर्थक थे डा० बी० आर० अम्बेडकर तथा श्री निवास महात्मा गाँधी ने इसका प्रबल विरोध किया , उन्होने समाज से बहिष्कृत, अस्पृश्य कहना भारतीय समाज के लिए कलंक स्वीकारा ।

---

1. कलम का सिपाही / पृष्ठ 401-2

उन्होने कहा था-"अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अच्छा समझूँगा कि हिन्दू धर्म ही डूब जाय। अछूतों के पृथक निर्वाचन नीति के विरोध में गाँधी जी ने 13 सितम्बर 1932 को प्राणरण अनशन प्रारंभ किया। हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य अछूतों को उनका सामाजिक अधिकार उनको प्राप्त करना था। अस्पृश्यों को अपनी धार्मिक - आस्था तब प्रकट करने के लिए मन्दिर प्रवेश तक से वंचित रखा जाता। दयानन्द सरस्वती द्वारा अस्पृश्यता को अवैदिक घोषित करने पर भी हिन्दू समाज उन्हें स्वीकारने के लिए तैयार न होता। उसी कारण अँग्रेजों ने इसे राजनैतिक समस्या का रूप दिया था। प्रेमचन्द गाँधी जी से पूर्ण प्रभावित थे वह भी "अस्पृश्यता" निवारण की दिशा में सतत यत्नशील रहे। अस्पृश्यों के मन्दिर प्रवेश सम्बन्धी हिन्दू समाज की रूढ़िवादी विचारधारा पर प्रहार करते हुए लिखा - यह युग प्रकाश का युग है। इसमें अब अन्धकार नही रह सकता। × × × अब विवश होकर युगधर्म के अनुसार ही चलना होगा। × × × क्या कोई भी वर्णाश्रम अपने हृदय पर हाथ रखकर कह सकता है कि वास्तव में यह छुआ छूत उन्हे धर्म की दृष्टि से उचित प्रतीत होती है। नहीं कोई भी यह नहीं कह सकता। एक स्वार्थ ही इसका कारण है। पर याद रहे, यह इस समय का स्वार्थ वर्ष दो वर्ष चाहे उनकी छाती को ठण्डा भले ही कर दें, पर आगे वह उनकी पुरानी से पुरानी दृढ़ से दृढ़ बुनियाद को भी उखाड़ फेंकेगा। वे स्वार्थ के जिस सुन्दर खिलौने से बच्चों की तरह खिलवाड़ कर रहे हैं। वह असल में डायनामाइट हैं, जो उनकी

सात पुश्तों को ध्वस्त कर डालेगा । × × × अर्थ यह कि प्रेमचन्द का युग कट्टर धर्मपन्थ से आक्रान्त, मनुष्य की अन्तरात्मा के निर्मलतम प्रकाश को भी धूमिल किए हुए था । समाज बाह्याडम्बर की चकाचौंध के कारण उचित अनुचित, करणीय अकरणीय, सत्य - असत्य, श्रेयस् - अश्रेयस् से दूर होता जा रहा था। यह आडम्बर ऐसा नहीं कि समाज के तथाकथित ठेकेदार पुरोहित - पण्डों के लिए ही मोह जाल रहा । अपितु सभी वर्गों के लिए उसमें आकर्षण समानतः उपस्थित था, चाहे वह सवर्ण हो अथवा हरिजन । प्रेमचन्द जी ने समाज पर छाये इस मिथ्याधर्मवाद के सम्बन्ध में भी लिखा × × × पढ़े लिखे समाज में चाहे धर्म केवल ढोंग रह गया है और मन्दिर प्रवेश को चाहे वे एक व्यर्थ सी बात समझतें हो लेकिन जनता अभी तक अपने धर्म को और अपने देवताओं को प्राणों से चिपटाये हुए है । उत्तर भारत में तो कुछ देवता ऐसे भी हैं जिनके पुरोहित हमारे हरिजन भाई ही है । जिस गाँव में चले जाइए, चमारों या भरों के पुरखे में आपको किसी नीम के वृक्ष के नीचे दस - बीस मिट्टी के बड़े बड़े हाथी लाल रंगे हुए एक जगह रखे हुए मिलेंगे । यह देवी का स्थान है । × × × वर्णवाले स्त्री-पुरुष बड़ी श्रद्धा से चबूतरे पर जाते हैं । वहाँ बताशे, धूप, दीप

---

1. कलम का सिपाही : अमृतराय / पृष्ठ 506-7

फूल, माला चढ़ाते हैं । जब वर्णवाले हिन्दुओं को हरिजनों के इन देवताओं की उपासना करने और हरिजनों को अपना पुरोहित बनाने में शर्म नहीं आती × × × तो हम नहीं समझते कि हरिजनों के मंदिरों में आ जाने से कौन सा अधर्म हो जायेगा।

वस्तुतः यह धार्मिक ढकोसला संकीर्णविचारधारा का एक ऐसा उपहार रहा है जो तत्कालीन भारतीय समाज के प्रबुद्ध जनों तक को मानवीय दृष्टिकोण अपनाने में सावधान था। रूढ़िवादिता एवं धर्मान्धता की मिथ्या अहमन्यता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकारान्तर से संस्कारगत तथा जन्मजात ही होकर व्याप्त थी । कुछ वर्णों के लिए तो यह जैसे जन्मते ही दूध की भाँति पौष्टिक - वस्तु के रूप में पिलायी जाती रही । प्रेमचन्द ने माना कि हिन्दू जाति का सबसे घृणित कोढ़, सबसे लज्जाजनक कलंक यही- टकेपंथी दल हैं जो एक विशाल जोंक की भाँति उसका खून चूस रही है । × × × जब तक यहाँ एक दल, समाज की भक्ति, श्रद्धा, अज्ञान, और अविश्वास से अपना उल्लू सीधा करने के लिए बना रहेगा, तब तक हिन्दू समाज कभी सचेत न होगा । और यह दल दस - पाँच लाख व्यक्तियों का नहीं है असंख्य हैं । × × × हिन्दू बालक जबसे इस धरती पर आता है और जब तक वह धरती से

---

1. कलम का सिपाही : अमृतराय / पृष्ठ 507

प्रस्थान नहीं कर जाता, इसी अंधविश्वास और अज्ञान के चक्कर में सम्मोहित पड़ा रहता है। नाना प्रकार के मनबढ़ंत किस्से-कहानियों से, दृष्टान्तों से, पुण्य और धर्म के गोरखधन्धों से, स्वर्ग और नरक की मिथ्या कल्पनाओं से यह उपजीवी दल उनकी सम्मोहनावस्था को बनाये रखता है।

निष्कर्षतः प्रेमचन्द का युग राजनीतिक अभ्युन्नति एवं सांस्कृतिक अवनति का काल था। एक ओर महात्मा गांधी जैसे संकल्प व्रती के नेतृत्व में राष्ट्र के अनेकशः चिन्तक भारतीय स्वातंत्र्य भावना का पांचजन्य-नाद कर अभारतीय शासन सत्ता का सिंहासन, उस नाद जनित स्वराघात के प्रतिघातों से आन्दोलित कर रहे थे, दूसरी ओर दयानन्द सरस्वती, राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, आदि मनस्वी समाज, सुधार द्वारा मानवीय जीवन मूल्यों के उन्नयन का मंत्र स्वर उच्चरित कर रहे थे। एक ओर वैभवविलास का उन्मुक्त हास दूसरी ओर क्षुधा व्यथा से त्रस्त जीवन परिहासों से उद्भूत विषमता- अन्ध को सर्वे सन्तु सुखिनः " की आर्षवाणी के साथ सामन्जस्य प्रतिस्थापना का भी प्रयास हो रहा था। प्रेमचन्द का रचनाकार व्यक्ति अपनी रचना धर्मिता में यह समग्र समायोजित करता हुआ प्रतीत होता है।

---

1. कलम का सिपाही : :/ पृष्ठ 537

××× अध्याय : दो ×××

प्रेमचन्द के पूर्व साहित्य में सामाजिक - राजनीतिक अनुभूति : अर्न्तदृष्टि

भारतीय कथा- साहित्य अत्यन्त प्राचीन है, जिसका मूल हम पालि जातक एवं गुणाढ्यरचित "बृहत्कथा" में उपलब्ध है । कवियों के लिए जिस प्रकार काव्य नाटक प्रणयनार्थ रामायण तथा महाभारत प्रेरणाश्रोत अद्यावधि मान्य है, उसी प्रकार कथा काव्य लेखकों की प्रेरणा भूमि, "बृहत्कथा" लौकिकरसाश्रयी होने के कारण विविध कथानक प्रदान करती आ रही है। जातक यद्यपि प्रत्यक्षतः कथाकारों के लिए कथा- आधार नहीं बना तथापि तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व की मध्यदेशीय लोक कथाओं का प्रकारान्तर से संकलन होने के कारण विभिन्न नैतिक, उपदेशपरक और नीति परक लघुकथा- विवेचन का स्रोत अवश्य कहा जा सकता है, ठीक उसी प्रकार जैसे पंचतंत्र की कहानियां । अतः यह कहने में हम कथमपि संकोच नही कर सकते कि आधुनिक युग से पूर्व भी विभिन्न श्रेणी के उपन्यास, पौराणिक आख्यान, नैतिकादर्शपूर्ण और लोक चातुर्य भावी कथाओं के साथ - साथ धर्म तथा भक्ति भाव मूलक कहानियों की रचना होती रही है। मध्यकाल में रचित ऐसे कथा काव्यों को हम "उपन्यास"की कोटि में अवश्य नही प्रतिष्ठित कर सकते, कारण यह "उपन्यास" संज्ञा और स्वरूप वस्तुतः आधुनिक युग की देन है । यद्यपि उपन्यास भी प्राचीन कथा काव्यों का आदर्श प्रतिस्थापक कहानियों के ही सदृश कथा सूत्र संयोजन प्रक्रिया

द्वारा पल्लवित- पुष्पित संरचना है, तथापि हमें उसके रूप - स्वरूप एवं मानदण्ड में पार्थक्य, वैशिष्ट्य स्वीकारना अनिवार्य है, कारण आधुनिक युग की औपन्यासिक कृति एक प्रकार से वैयक्तिवादी दृष्टि तथा आत्मपरक सोच और विश्लेषण का प्रतिफलन है । "लेखकों" का इस प्रकार का वैयक्तिक दृष्टिकोण ही नये उपन्यासों की आत्मा है । कथानक को मनोरंजक और निर्दोष बनाकर और पात्रों के सजीव चरित्र निर्माण तथा भाषा की अनाडम्बर सहज प्रवाह की योजना के द्वारा उपन्यासकार अपने वैयक्तिकमत को ही सहज स्वीकार्य बनाता है'।[1]

हिन्दी साहित्य में आधुनिक उपन्यास कहानी की विकास यात्रा का प्रारम्भ वस्तुतः उन्नीसवी शताब्दी के उषः बेला में हुआ । यह विकास यात्रा ब्रज और ﴾ उर्दू शब्दावली समन्वित तरंगद्य साधित, अननवद्य बल्भा ﴾रास﴿ संप्रेरित गद्यरूपी रथ पर आरूढ़ होकर काट्य सरसी के तट सुखदशीतलच्छाय - तले ठहरती, इण्डियन प्रेस द्वारा प्रकाशित एवं प्राचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की संपादन कला द्वारा मण्डनोपकरण को सहेजती, शती के उत्तर पूर्व भाग - अवधि तक दिग्भ्रमभ्रान्त, भटकती सुगम पथान्वेशी बनी बीसवीं शताब्दी के दि कर करों का दुलार ग्रहण कर सतत अग्रसर होती रही । सन् 1900 में श्री किशोरीलाल गोस्वामी ने " टेम्पेस्ट" पर आधारित कहानी की रचना की जिसे लेखक ने मौलिकता में ढालने का पूर्ण प्रयास भी किया, पश्चात रामचन्द्रशुक्ल की भाव

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावी : भाग-3 /पृष्ठ 484

प्रधान कहानी ग्यारह वर्ष का समय कुछ सीमा तक आधुनिकता के साँचे में ढाली प्रतीत हुई। इस प्रकार 1900-1910 तक वह विकास यात्रा

एकआकर्षण मात्र बनी जनमानस को उद्वेलित करती अविरम बढ़ती रहीं। दूसरे शब्दों में विकास यात्रा के इस विराम को हिन्दी कथा प्रक्रिया का एक प्रयोग काल कहा जा सकता है। क्रमानुसार आगे विद्यानाथ शर्मा की " विद्याविहार" तथा मैथिलीशरण गुप्त की "निन्यान्वे का फेर" कहानियाँ प्रकाशित हुईं। अब तक की प्रकाशित कहानियों में शिल्प- विधान और घटना संघटन की दृष्टि से निखार और प्रज्वलता प्रौढ़ता का प्रभाव ही दृष्टिगत हुआ। धीरे - धीरे कहानी लेखन की ओर रचनाकारों की दृष्टि गयी। स्वामी सत्यदेव विश्वम्भरनाथ "जिज्जा", गिरिजा कुमार घोष, वृन्दावन लाल वर्मा तथा मैथिलीशरण गुप्त की कहानियाँ प्रकाशित हुईं। 1907 में तीन कहानियाँ दुलाई वाली "राखीबन्द भाई" तथा नकली किला" क्रमशः बंग महिला वृन्दावन लाल वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित प्रकाशित हुईं। इनमें से प्रथम कहानी यथार्थवादी चित्रण करने वाली स्वीकारी गयी। इस प्रकार प्रवर्तित विकास यात्रा अनवरत - विरामों के स्नेहिल -पाथेय अधिग्रहण करती" शुभा सन्तु पन्थानः" की भावात्मक आशीर्वचन अवधारणा को पद पद पर परिव्याप्त करने लगी। अस्तु।

हमने ब्रजभाषा एवं उर्दू शब्दावली समन्वित गद्य का उल्लेख पूर्व अनुच्छेद में कर चुके हैं। वस्तुतः कथा - साहित्य की आधारभूत गद्य ही है।

गद्य परिनिष्ठित होने के साथ - साथ ही हिन्दी साहित्य की यह विधा भी सशक्त संप्रेषणीय बनी यह कहना कथमपि असंगत नही है। इसलिए गद्य एवं कथा साहित्य दोनो के विकास को हम अन्योन्याश्रित और परस्पर संपूरक कहना चाहेंगे ।

आधुनिक गद्य :- कथा- साहित्य का उपजीव्य

बीसवी शताब्दी से पूर्व हिन्दी साहित्य का अर्थबोध काव्य विधा से होता रहा । बीसवीं शती के उषः काल में " पंचतंत्र" एवं गुणाढ्यकृत " बृहत्कथा की कौतूहलप्रद, चमत्कारिक कथाओं से अनुप्राणित होकर रचना धर्मियों द्वारा कथागत भावों को आत्मसात् कर युगानुकूल परिवेश में उनको समेटने और तद उद्गमित चिन्तन क्रिया को अभिव्यक्त करने के लिए गद्य को सशक्त एवं प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया जिसे आधु-निक गद्य नाम से अभिसंज्ञित कर विचारकों ने प्रतिष्ठित किया । इस गद्य ने कथा साहित्य को जीवन प्रदान किया। इस गद्य का प्रादुर्भाव कल-कत्ता में स्थापित "फोर्ट विलियम कालेज" के हिन्दी-उर्दू अध्यापक स्तर जान गिलक्राइस्ट के सत्प्रयास से हुआ ।उन्होने एतदर्थ कई मुंशियों की नियुक्तियां की , जिन्होने मौलिक कम परन्तु संस्कृत और फारसी की कृतियों को हिन्दी गद्य में रूपान्तरित किया । इनमे से प्रमुखतः मुंशी सदासुखलाल, मुंशी इंशा अल्ला खॉ, लल्लूलाल तथा पंडित सदल मिश्र ने

ने योगदान दिया । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में मुंशी इंशा अल्ला खाँ की " रानी केतकी की कहानी" लल्लूलाल की " सिंहासन बत्तीसी", बैताल - पच्चीसी", माधवानन्द कामकन्दकला", शकुन्तला" और " प्रेमसागर" एवं सदलमिश्र की पुस्तक "नासिकेतोपाख्यान" प्रकाशित हो चुकी थीं । उनमें से अधिकांश प्रायः संस्कृत कथासाहित्य से अनूदित होकर आयीं । गुलबकावली" तोता कहानी" तथा बागे उर्दू और लगभग एक पृष्ठों वाली तिलस्में होशरूबा "चालीस भागों में प्रकाशित हुए । इन कृतियों से कथा साहित्य का न कोई रूप उपस्थित हुआ तथा न उनसे कथा साहित्य को दिशाबोध ही प्राप्त हो सका । इनमें अय्यारी, तिलस्म का ही प्राबल्य रहा और पाठक के लिए एक मात्र कौतूहल उत्पन्न करती थीं । इस कथा पुस्तकों का प्रकाशन तथा प्रचलन उपन्यास के रूप में तो आभास भी नहीं करा सका, कारण इनमें लेखक का कहीं भी कोई वैयक्तिक अवधारणा का समावेश नहीं था । तथापि इतना तो स्वीकार्य ही है कि इनसे पाठकों के समक्ष हिन्दी का एक गद्य रूप उपस्थित हो गया जिसने आगे चलकर एक रूप परिष्कृत करने के लिए आधार बना ।

इंशा अल्ला खाँ :-

इनकी पुस्तक " रानी केतकी की कहानी" अथवा उदयभानु चरित" की भाषा में शुद्ध हिन्दी का रूप अवश्य परिलक्षित होता है परन्तु उसे परिष्कृत हिन्दी कहना कठिन है क्योंकि वह एक सीमा

फारसी उसे प्रभावित हैं । इस कृति में कथा शैली एवं चरित विश्लेषण दोनो का निर्वहन अत्यन्त कुशलतापूर्वक मिलता है । उसे हम कथा तत्व, देशकाल, वातावरण, कथोपकथन तथा पात्रों के चरित्रांकन की दृष्टि से खड़ी बोली की रचना यदि स्वीकारें तो असंगत नही कहा जा सकता । प्रकारान्तर से " रानी केतकी की कहानी से हिन्दी में उपन्यास रचना का प्रारम्भ भी कतिपय समालोचकों के मत से स्वीकार्य है ।

लल्लू लाल :-

फोर्ट विलियम कालेज के तत्कालीन लेखकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान रहा । यह ब्रजभाषा क्षेत्र के निवासी थे , इस कारण इनकी रचनाओं (प्राय: ब्रजभाषा से खड़ी बोली हिन्दी में अनूदित) में प्रयुक्त भाषा पर ब्रजभाषा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । तथापि उन्होने अपनी इन रचनाओं के माध्यम से खड़ी बोली का एक रूप निर्मित करने और संवारने में महत्वपूर्ण योगदान किया । प्रामाणिक हिन्दी में रचना करने के लिए कालेज के तत्कालीन प्रमुख गिलक्राइस्ट ने अधिकार भी उन्हे सौंपा था ।

सदल मिश्र :-

इस समय फोर्ट विलियम कालेज की दृष्टि मुख्य रूप से इस ओर केन्द्रित रही कि जनमन हिन्दी पढ़ने के लिए अभिमुख हो एतदर्थ आवश्यक था कि हिन्दी भाषा में सहज - बोधगम्य एवं रूचिकर साहित्य का सर्जन हो । यह कार्य सदल मिश्र तथा लल्लू लाल दोनो

पूर्ण मनोयोग तथा कुशलतापूर्वक किया । यद्यपि इन्होंने अनेक पुस्तकें अनूदित की किन्तु अद्यावधि प्राप्त एकमात्र नासिकेतोपाख्यान (दूसरा नाम चन्द्रावती है) उपलब्ध हो पाया है । यह भी शुद्धतः खड़ी बोली को न अपना सके । ब्रजभाषा के प्रभाव से वंचित न रह सके । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सदल मिश्र की भाषा ब्रज एवं खड़ी बोली के बीच की सहज सरल रूप में निखर कर हमारे समक्ष आयी जो आगे चल कर खड़ी बोली को प्रतिस्थापित करने का सोपान बनी ।

तत्कालीन सरकारी नीति- जन सामान्य को हिन्दी पठन- पाठन के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिए रामायण , प्रेमसागर आदि पुस्तकों को पाठ्य-क्रम में भी स्थान दिया गया । इसका अर्थ यह कथमपि नही कि सरकारी नीति हिन्दी के विकास हेतु रही, हम इतना स्वीकार कर सकते हैं कि अपने निहित स्वार्थ की पूर्ति निमित्त फोर्ट विलियम कालेज के अधि-कारी हिन्दी में रूचि मात्र ले रहे थे । उनका यह सहयोग हम उपेक्षणीय नहीं कह सकते । इसी प्रभावक कालावधि में शिक्षा विभागीय क्षेत्र में एक अद्भुत व्यक्ति का अवतरण हुआ - **राजा शिव प्रसाद सितारेहिन्द** ।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द :-

शासकीय सेवारत होने के कारण फारसी लिपि का सशक्त ढंग से विरोध न करके भी देवनागरी लिपि की प्रतिष्ठा तथा उसके प्रचलन के लिए सतत प्रयत्नशील रहे । उनकी दृष्टि

में पूर्व लेखकों लल्लू लाल आदि की भाषा पिछड़ी भाषा थी । उसमें हिन्दी का रूप निखर नही पाया हैं । यह संस्कृत मिश्रित हिन्दी के पक्षधर थे । उनकी पुस्तकों- उपनिषद- सार, भूगोल, हस्तामलक, वामा मन-रंजन, आलसियों का कोड़ा, विद्यांकुर, राजा भोज का सपना, में ऐसी ही भाषा का प्रयोग हुआ । राजा शिव प्रसाद ने हिन्दी के क्षेत्र में जो कार्य किया, वह सम्पूर्ण रूप से उस युग का द्योतक है जब कि खड़ी बोली की जीत तो लगभग हो चुकी थी, पर अभी आजकल हम जिसे हिन्दी कहेंगे यानी उर्दू से अलग हिन्दी का अच्छी तरह विकास नहीं हुआ था[1]।[1] सन् 1964 में राजा शिव प्रसाद ने एक इतिहास ग्रन्था का प्रणयन किया, जिसका नाम हैं "इतिहास - तिमिरनाशक" । यह नाम से विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ भाषा - निबद्ध रचना प्रतीत होती है । परन्तु इसकी भाषा फारसी उर्दू मिश्रित है । प्रकारान्तर से यह रचना हिन्दी और उर्दू को परस्पर निकटस्थ करने वाली भी कही जा सकती है । जबकि स्थान स्थान पर अत्यन्त ही विशुद्ध भाषा - प्रयोग भी है -बहु- तेरे गोबरगणेश समझते हैं, कि जिस तरह हिन्दू और मुसलमान चढ़ कर गिरे, उसी तरह किसी दिन अंग्रेज भी गिर जायेंगे । पर यह उनकी बड़ी भूल है । अंग्रेज तभी गिर सकते हैं, उनमें फूटपैदा हो । सो यह उनकी विद्या और उनके मत दोनो के विरुद्ध है । फूट और बैर दोनो इसी देश की मेवा हैं । इसाइयों के ठण्डे मुल्क में उसका अंकुर नहीं है।

---

1. प्रेमचन्द्र व्यक्ति और साहित्यकार/पृष्ठ 27

उनकी भाषा को देखकर यह एक मत स्थिर किया जा सकता है कि राजा शिव प्रसाद, क्रमश: उर्दू की ही ओर अभिमुख होते गये, परिणामत: उनकी भाषा तो उर्दू रही पर लिपि अवश्य देवनागरी हो गयी ।

राजा लक्ष्मण सिंह :-

यह सितारेहिन्द की भाषा के प्रबल आलोचक रहे उनका स्पष्ट मत रहा कि अरबी , फारसी, अथवा उर्दू शब्दों के बिना हम हिंदी बोल सकते हैं । लक्ष्मण सिंह की भाषा में भी तद्भव शब्दों का बहुलता से प्रयोग मिलता है । पर उनका गद्य प्रारम्भिक हिंदी का गद्य कहलाने की क्षमता रखता है । उन्होंने कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम्, रघुवंश तथा मेघदूत का अनुवाद किया । मूलत: इनकी भाषा काव्य की भाषा ही कही जायेगी तथापि वह हिन्दी के परिष्कार की दिशा में मानदण्ड स्वरूप भी स्वीकार्य योग्य हैं । अस्तु ।

आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास तथा भाषा - परिष्कार की दिशा में "रानी केतकी की कहानी" में प्रयुक्त गद्य के प्रारम्भिक स्वरूप को लल्लू लाल, सदल मिश्र, राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द एवं राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा किये गये क्रमागत भाषिक, प्रयोगों का विशिष्ट योगदान है । उनके अतिरिक्त मथुरा प्रसाद मिश्र, ब्रजवासीदास, बिहारी लालचौबे,

---

१। हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली : भाग-3 / पृष्ठ 468

काशीनाथ खत्री आदि ने भी अपनी रचनाओं द्वारा एक भावाभिव्यक्ति में समर्थ गतिशील भाषा मे सुष्ठु गद्य प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

भारतेन्दु ::

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तर पूर्व भाग की कालावधि पर्यन्त गद्य की विकास यात्रा द्विराह पर पहुँच चुकी थी- एक संस्कृत निष्ठ भाषा निबद्ध, दूसरी उर्दू शब्दावली से प्रभावित भाषा प्रयोग । यह दोनो ही राहें इस विकास यात्रा के लक्ष्य संवाहक कदापि नहीं बन सकते थे किन्तु आवश्यकता थी किसी तेजस्वी प्र काश पुंज प्रभावक व्यक्तित्व के अवतरण की जिसके आभामण्डल में दोनो राहें गतिहीन हो सकें । इस अवधि में ही भारतेन्दु का अवतरण हुआ । उन्होने 1973 में एक पत्रिका "हरिश्चन्द्र मैगजीन" नाम से पूर्व प्रकाशित पत्रिका " कवि वचन सुधा" के अतिरिक्त प्रारम्भ की । कवि वचन - सुधा" मुख्यतः काव्य प्रधान पत्रिका रही, दूसरी का लक्ष्य हिन्दी गद्य को दिशा निर्देश आठ अंकों के प्रकाशनोपरान्त इसका नाम परिवर्तित कर हरिश्चन्द्र - चन्द्रिका कर दिया गया । भारतेन्दु जी के मत में हिन्दी का एक नाम रूप सन् 1873 से विकासोन्मुख हुआ, जिसका सूत्रपात हरिश्चन्द्र-चंद्रिका पत्रिका के प्रकाशन से माना जाना चाहिए । हिन्दी का वह नया रूप क्या तथा कैसा था ?

हिन्दी का यह विकासोन्मुख नया स्वरूप था - आग्रह दुराग्रह एवं अपेक्षा उपेक्षा की भावना से परे, एक प्रकृत , सहज रूप । अर्थ यह कि एक ऐसी भाषा का विकास जो बन्धन निर्मुक्त तथा कृत्रिमता से सर्वथा रहित थी। मुंशी ज्वाला प्रसाद का कविराज की सभा" तोताराम का अद्भुत अपूर्व स्वप्न", बाबू काशी प्रसाद का" रेल का विकट खेल, आदि लेख ऐसे ही थे जिनमें भाषा का सहज प्रकृत रूप प्रयुक्त हुआ, न संस्कृत के तत्सम शब्दों की छटा, न उर्दू शब्दावली की नीरस विकट घटा, परन्तु ऐसी निखारयुक्त कि भावा-भिव्यक्ति अनायास प्रफुल्ल-पुष्प पराग - सी बिखर पड़ती । भारतेन्दु का प्रयास ऐसी सुष्ठु भाषा को विकसित करना था जो नसंस्कृत विद्वानों के लिए गर्हित न संस्कृतर भाषाभाषी पाठक के लिए अग्राह्य हो सके । दूसरे शब्दों में यह कि वह हिन्दी को न संस्कृत शब्दों से भार वोहित और न फारसी उर्दू की शब्दावली से स्व-प्रकृति विरूपित रूप देना चाहते थे ।

गद्य साहित्य की सशक्त विधा :: कथा :

कथा साहित्य में प्रमुखतः दो अंग- कहानी तथा उपन्यास । प्रथम कहानी उपन्यास की उपेक्षा अधिक ग्राह्य एवं प्रभावक विधा है । कारण है इसका लघु कलेवर अल्पावधि में पठनीय और एकांश काल तथा वातावरण के चित्रण से कथागत पात्रानुरूप तादात्म्यता - स्थापन की सहजतावश उसके कथ्य और लक्ष्य की बोधगम्यता , जो उपन्यास में श्रम साध्य होता है । हम प्रथमतः साहित्य के विकास क्रम पर निज गति-मति के

1• हजारी प्रसाद द्विवेदी- ग्रन्थावली भाग-3 पृष्ठ - 468

अनुसार दृष्टि -क्षेपण करना चाहेंगे -

कथा साहित्य की विकास यात्रा का प्रारम्भ निश्चित ही बृहत्कथा की कुतूहलदामिनी, विविध चमत्कार भाविनी, लोकमानस - अनुरंजिनी कथाओं के विशालसागर से उच्छरित - कथात्मक बिन्दु द्वारा उद्गमित सूत्र- संयोजन से होकर, पश्चात् पौराणिक - कथानकों के बिम्ब- अधिरोपण-पल्लवित एवं पुष्पित उपवन- विकीर्ण सौरभ के लोकमंगल - भावित पथानुगमन गति में अग्रसर हुई, जो कालान्तर में साहित्य का महत्वपूर्ण अंग बनी ।- कहानी कहने की प्रथा कोई नयी चीज नही है, पर"कहानी" नामक नया साहित्यांग आधुनिक युग की देन है । x x x शुरू शुरू में पश्चिमी देशों में भी उपन्यास और कहानी में कोई भेद नहीं किया जाता था । परन्तु जैसे - जैसे ही सभ्यता की भीड़-भम्भड़ बढ़ती गई, वैसे- वैसे अल्प समय साध्य छोटे- छोटे साहित्यांगी का विकास भी होता गया¹ । काव्य के क्षेत्र में लिरिक या गीत काव्य, नाटक के क्षेत्र में एकांकी तथा उपन्यास और कथा के क्षेत्र में, कहानी इसी प्रयास के फलहै । आधुनिक युग की साहित्यांग रूप में प्रतिष्ठित कहानी का प्रारम्भ - वस्तुतः बीसवीं शती में "सरस्वती" साहित्य- मासिक पत्रिका के प्रकाशन काल से स्वीकारना समीचीन है, वह अवधि 1910 - 1911 वर्ष की हो सकती है ।

भारतेन्दु- पर्यन्त हिन्दी साहित्य में कहानी कला, विकास नहीं अपितु विकासोन्मुखी देहली तक पहुँच पायी थी ।"रानी केतकी की कहानी" को

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली भाग 3 पृष्ठ- 488

कतिपय आलोचकों न प्रथम कहानी होने का गौरव प्रदान किया, परन्तु उचित नही वस्तुतः इसे हम मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित - भावोद्वेलित कहानियों की अंतिम श्रृंखला कहें तो संगत होगा । मात्रा भाषाशैली का आधुनिक कहानी- कला से साम्य इसे प्रथम कहानी का गौरवास्पद पद नही दे सकता । अस्तु । मुद्रणादि की नवीन सुविधा एवं साधनों के प्रचार- प्रसार होने पर एक प्रकार से, प्राचीन कला के सम्बन्ध में हमारा साहित्य प्रायः भ्रमित होने लगा था वह अरबी, फारसी की संस्कृति-परक कहानी परम्परा से आक्रान्त होकर, कौतुक तथा चमत्कार - भावी कथानकों, घटनाओं से पूर्ण कथा साहित्य की ओर अभिमुख हो गया । फारसी साहित्य के आदर्श एवं एकान्तिक परम्परा आबद्ध प्रेम कथानकों की ओर दृष्टि केन्द्रित हो चुकी थी । तत्कालीन कहानी लेखकों पर " लैलामजनूँ", किस्सए गुलबकावली", आदि की शैली, भाषा कथा - संयोजन तथा घटना-संघटन का प्रभाव था । वस्तुतः उस कालावधि में भारतीय कथा की रूढ़ियों, और फारसी कथा-गत अभिप्रायों के निम्नस्तरीय समन्वय भावी अवयवों द्वारा रचित साहित्य, मात्र मनोंरंजन परक बनने के वह न तो उच्चश्रेणी की कोटि में प्रतिष्ठा पा सका और न हो अभिजात्म - साहित्य के मोहक प्रसाद की ड्योढ़ी पर पद रख सका । तथापि भावगत परिवेश के कारण नवयुगारम्भ पर भी वह प्रभाव गया नही तथा " छबीली भटियारिन", किस्सा साढ़े तीनयार"

और एक रात में चालीस खून" आदि कहानियाँ, रुचि विकृति ग्रस्त हो जाने के कारण, मानसिक स्तर को प्रभावित करती रही । इस प्रकार की मनोरंजकता के स्रोत फारसी संस्कृति भावों से अनुप्राणित कथा शिल्प एवं उर्दू शब्दावली से बोझिल किन्तु रागादि व्यंजक रसाश्रयी - कहानियों के अशिवमय- लोभ से वंचित होने के लिए प्रयासरत एक अलग रचनाधर्मी वर्ग इस क्षेत्र में अवतरित हो रहा था। इस अवतरण की भूमि थी भारतेन्दु युगीन प्रातिभउद्रेक ।

भारतेन्दु युगीन रचनाकार यद्यपि फारसी संस्कृति प्रधान कथा शैली से विरत अपनी मानसिकता को आधुनिक भाव-बोध से संस्पृष्ट बना कि किंचिद चमत्कार करने के लिए तत्पर होकर भी प्राचीनता के मोह से आ- बद्ध होने से उसकी समस्त रचनाधर्मिता मात्र औत्सक्य- बोधक ही बन पायी । मुंशी इंशा अल्ला खाँ के समकालीन कतिपय अन्य लेखकों ने भी कहानियाँ लिखी, उनमें भी यदि रागानुराग भावो चित्रांकन का मोह अल्प हुआ भी तो उनमें धर्म एवं पुराणगत अथवा उनसे अनुप्राणित आदर्शो- न्मुखी प्रवृत्ति के प्रतिलोभ अवश्य परिलक्षित होता रहा । इसी प्रकार राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की "राजा भोज का सपना" शीर्षक और भारतेन्दु लिखित अद्भुत अपूर्व स्वप्न" शीर्षक कहानियों में यत्किंचित आधुनिक कथा शैली तथा भावाभिव्यक्ति का समावेश अवश्य हुआ किन्तु आधुनिक कथाशिल्प का सजा-संवरा-रूप नहीं ही उपस्थित हो सका,

सानिध्य संस्थापन मात्र ही उसे कहना पर्याप्त है । अर्थ यह कि आधुनिक का मूलभूत – तत्व रचनाधर्मी का कहानी में उसका एक वैयक्तिक दृष्टि-कोण एवं अन्तर्निहित लक्ष्य, इन कहानियों में पूर्ववर्ती कहानियों की अपेक्षा आधुनिक तकनीक तथा भावबोध होते हुए भी समग्रतः नहीं प्राप्त होता।

:: आधुनिक लक्षण एवं भाव बोध – परक कहानी ::
:–:–:–:–:–:–:–:–:–:–:–:–:–:–:–:

कहानी कला के विकास में "इन्दु", "भारतमित्र" और "सरस्वती" पत्रिकाओं का सर्वाधिक योगदान है, इनमें प्रकाशित कहानियों –"ग्राम" – §1911 ई0§ , "पिकनिक" तथा सुखमय जीवन" और उसने कहा था", के लेखक क्रमशः जयशंकर प्रसाद, गंगा प्रसाद श्रीवास्तव तथा चन्द्रधर शर्मा "गुलेरी" सर्वथा आधुनिक कथाशिल्प पर बढ़े ही नहीं अपितु " गुलेरी" तथा प्रसाद हिन्दी साहित्य जगत के प्रखर तेजपुन्ज स्वरूप अद्यावधि प्रकाशमान हैं । इनके अतिरिक्त ज्वाला प्रसाद शर्मा और विश्वम्भर नाथ "कौशिक", सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, राजा राधिकारमण प्रसाद, शिवपूजन सहाय, ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पुन्ना लाल बख्शी, वृन्दावनलाल शर्मा इस काल के उल्लेखनीय कथा लेखक हैं । हम यहाँ कतिपय कथालेखकों के सम्बन्ध में सविस्तार विवेचन प्रस्तुत करेंगे ।–

जयशंकर प्रसाद :–

"प्रसाद" के कथाकार व्यक्तित्व का उदय " इन्दु" में प्रकाशित कहानी " ग्राम" से हुआ § 1911 ई0§ एक ही

वर्ष के अन्तराल में उनकी दूसरी कहानी "रसिया बालम" का प्रकाशन हुआ । उसके पश्चात् "प्रसाद" जी कहानी क्षेत्र में उत्तरोत्तर कथा शिल्प को निखार प्रदान करते रहे । परिणाम स्वरूप 1912 में ही उनकी कहानियों का प्रथम संग्रह {छाया} प्रकाश में आ गया । इसमें "ग्राम", चन्द्रा" "तानसेन", रसिया बालम , एवं मदन मृणालिनी कहानियाँ संकलित की गई । संकलन की कहानियों का शिल्प , कथा - विस्तार चरित्र चित्रण आदि स्तर प्राय: समान हैं । "तानसेन", "चन्द्रा" तथा रसिया बालम" की पृष्ठभूमि अवश्य ही पृथक - पृथक है, परन्तु लेखकीय दृष्टिकोण तथा लक्ष्य पृथक नहीं कहे जा सकते । तीनों ही कहानियों में निश्छल प्रेम का विश्लेषण अत्यन्त ही मनोवैज्ञानिक सोच के साथ, किंचिद कल्पनात्मक उद्भावनाओं के माध्यम से किया गया है । "चन्द्रा" कहानी में कथा-नायिका में अनन्य प्रेम की पराकाष्ठा प्रस्थापित की गयी है । वह "हीरा" से अनुरागबद्ध है किन्तु उसका विवाह एक अन्य युवक रामू के संग विनिश्चित हो जाता हैं । "चन्द्रा" अपने अन्य राग, दृढ़ संकल्प के बल लक्ष्य में सफल होती है, उसका विवाह उसके प्रेमी हीरा से हो गया । रामू उन दोनों के सुखमय जीवन से ईर्ष्या करने लगा। उसकी यह ईर्ष्या यहाँ तक विकृत रूप धर बैठी कि उसने हीरा की हत्या कर दी । चन्द्रा तथा हीरा का पारस्परिक राग रूप -सौन्दर्य आश्रित भोगभाव अनुप्रेरित न होकर, निश्छल एवं आत्मिक था । प्रेमी के अभाव से वह जीवनधारण करने को परम अपराध मानती थी ।परि-णामत: अपने प्रेमी के हत्यारे रामू से उसके घृणित कृत्य का फल

देकर स्वयं प्राण विसर्जित कर बैठी।[1] "चन्द्रा" की कथा के ही समान तत्सदृश भाव भूमि पर रसिया बालम" का भी कथानक विस्तार था विकसित हुआ है। इसमें भी निर्मय प्रेम की सुष्ठु अभि व्यंजना प्राप्त हुई है। { प्रेमी } रसिया ने प्रेमिका की प्राप्ति - आशा से हतोत्सा- हित होकर विषपान द्वारा मरण का वरण कर लेना श्रेयस्कर स्वीकारा।[2]

"ग्राम" कहानी में ग्रामीण- जीवन की वह झाँकी प्रस्तुत की गई है, जहाँ पूँजीपति द्वारा ऋण देकर सहज - सरल हृदय जनों की सम्पत्ति को अधिगृहीत करना सामान्य प्रकरण रहे हैं। "मदन- मृणालिनी" कहानी पूर्व सन्दर्भित "चन्द्रा" तथा " रसिया बालम" की भावभूमि पर ही पल्लवित-पुष्पित प्रतीत होती है। अन्तर है अनुराग के रूप का। जहाँ पूर्व कहानियों में नायिका प्रेमी के भाव में और नायक प्रेमिका की अप्राप्ति में मरण का वरण करते हैं और निर्मय प्रेम में कलंक नहीं आने देते, वहाँ प्रेमी मरण तो दूर सामाजिक बन्धन के प्रति विद्रोह का भी साहस नहीं कर पाता। इस कहानी में भोगमूलक प्रेम का अंकन है। कहानी में अन्तर्जातीय विवाह की सामाजिक समस्या उठायी गयी है। जिसे हम प्रकारान्तर से सुधारवादी दृष्टिकोण का उपस्थापन

---

1. छाया {कहानी संकलन} /पृष्ठ 19
2. वही / पृष्ठ 35

कह सकते हैं । रूढ़िवादी परम्परा के प्रति विद्रोह भावना । मदन यद्यपि मृणालिनी से अनुराग बद्ध है किन्तु बंगाली समुदाय की अपनी प्रेमिका के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित कर जीवन निर्वाह करने के लिए साहस नहीं करता क्योंकि वह बंगाली नही है ।[1]

हम पूर्व परिच्छेदों में उल्लेख कर चुके हैं कि 1900-1911 की कालावधि हिन्दी कहानियों के लिए प्रयाग काल कहा जाता है । इस प्रयोग काल में रचित प्रसाद जी की कहानियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं । यदि ये कहानियाँ प्रारम्भिक होने के कारण कथा- शिल्प की दृष्टि से यदि मानक नहीं हैं तथापि आधुनिक कहानी के शैली शिल्प गत मूल तत्वों से सर्वथा अस्पृष्ठ हैं, यह कहना भी उचित नही है । प्रसाद का कथाकार व्यक्ति उत्तरोत्तर अपने शिल्प में निखार संप्रेषण के बल मनोवैज्ञानिक चित्रण तक सहज किन्तु सशक्त होकर पहुँचा है । उनकी कहानियों में उद्देश्य का बाह्यरूप मात्र एक पक्षीय न होकर वह मनो-भावमूलक होकर केन्द्र बिन्दु प्रेम के अन्तर्द्वन्द भावित रूप को प्रकट करने में भी सफल हो सका है । प्रसाद जी कहानियाँ यथार्थ की भावभूमि पर केन्द्रित सामयिक सामाजिक विविध समस्याओं से आक्रान्त जीवन के बहुपक्षीय वृत्त में घूमती परिलक्षित होती हैं । समग्रतः यदि हम यह कहे कि इस प्रारम्भिक संकलन "छाया" में संगृहीत उनकी

---

1. छाया {कहानी संकलन} / पृष्ठ 61

कहानियां वैयक्तिकमत एवं उनमें अन्तर्निहित उद्देश्य की प्रतिस्थापना में सर्वथा सफल है ।

चन्द्रधर शर्मा "गुलेरी" :-

गुलेरी जी की प्रथम कहानी "भारत मित्र" में सुखमय जीवन एवं सन् 1915 में "सरस्वती" में उनको हिन्दी साहित्य जगत में अमरत्व प्रदान करने वाली कहानी, "उसने कहा था" प्रकाशित हुई । उनकी तीसरी कहानी है "बुद्धू का काँटा"। मात्र तीन कहानियों के माध्यम से "गुलेरी" जी ने कहानी - क्षेत्र में जो एक मानदण्ड स्थापित किया, वह आज तक उनका निजी ही रह गया । उसका अतिक्रमण न हुआ, और न होने की संभावना ही है ।

सुखमय जीवन उनकी प्रथम कहानी होने के कारण यद्यपि आधु-निक कथा शैली की तकनीक एवं रचनाकार के दृष्टिकोण पर पर्याप्त सटीक होते हुए पाठकीय रूचि- पोषक है तथापि चारि-त्रांकन एवं स्वस्थ शिल्प की सीमा का स्पर्श नही कर पाती । उसके पश्चात प्रकाशित " उसने कहा था" एवं "बुद्धू का काँटा" शीर्षक कहानियाँ साहित्य - जगत की ऐसी निधि बनी जिनकी उपेक्षा कथा साहित्य को सदा- सदा के लिए शून्यता प्रदान कर देने वाली है । इन कहानियों में सहज भाषा, प्रयोग सामयिक भाव- बोध मनोवैज्ञानिक - संस्पर्श, पात्रानुकूल-वाता-

वरण परिवेश देश मन्तव्य विशेष संकेतित बिन्दु-रेख, आदर्शो-
न्मुख लक्ष्याभिधेय आदि सम्यकृतया समायोजित हैं । उसने
कहा था कहानी का प्रमुख पात्र लहना सिंह एक कर्तव्यनिष्ठ -वचनरक्षक
आदर्शोन्मुख चारित है । कहानी में इसके दो स्वरूप विशेषतः उभरे हैं
एक वह जब वह सूबेदार हजारासिंह एवं उसके पुत्र बोधासिंह की
युद्ध भूमि में पूर्ण रक्षा का भार सूबेदारिनी के अनुरोध पर स्वीकारता
तथा निर्वाह करता है, दूसरा रूप वह है जो इस स्थिति का सही अर्थो
में आधार है । उसके बाल्यकाल की घटना, जहाँ वह किसी लड़की से
प्रायः "तेरी कुड़माई हो गयी"? कहकर, किसी अव्यक्त भाव को प्रति-
च्छवित करता है । अंततः एक दिन उस लड़की की ओर से सकारात्मक
संकेत प्राप्त होने के पश्चात् बालक (किशोर) लहनासिंह द्वारा एक
लड़के को मोरी में धकेला जाना, कुत्ते पर पत्थर-प्रहार, एक गोभीवाले
ठेले को धूल से भर दिया जाना, पुनः किसी से टकराने के कारण,
अन्धे की उपाधि से विभूषित होना, आदि घटनाओं के उपरान्त वह
घर पहुँचता है।[1] लहना सिंह के हृदयस्थ भावों की उद्दाम - परिणति
ही इन घटनाओं का मूल है । यही भाव वहाँ भी अनाव्यक्तरूप से उस
समय भी उस पर प्रभावी रहे जब सूबेदारिनी (रूप में उसी लड़की ने)
ने उससे अपने पति और पुत्र के प्राण-रक्षण हेतु आग्रह किया। गुलेरी जी
का यह मनोवैज्ञानिक चित्रण अत्यन्त प्रभावक एवं कथाशिल्प को निखार
देने वाला है ।

---

1. गुलेरी जी की अमर कहानियां :शक्तिधर गुलेरी /पृष्ठ 58

द्वितीय कहानी बुद्धू का काँटा" तो पूर्ण मनोवैज्ञानिक कहानी कही जानी चाहिए । इसका कथानक ग्रामीण परिवेश की निश्छलता, सहजता, सरलता, आतिथेय - मर्यादा से परि-पूर्ण है । कथानायक रघुनाथ प्रसाद नगर- जीवन से शिक्षा पूर्ण कर अपने घर गाँव जा रहा है । मार्ग की श्रांति और अन-भ्यास ने उसे पिपासाकुल कर दिया । उसे मार्गस्थ एक कुएं पर कुछ स्त्रियाँ जल भर रही थी । उसने जल पीने की इच्छा प्रकट की । उस स्त्री समुदाय में एक लड़की भी थी भागवन्ती। गाँव का निश्छल वातावरण का प्रभाव वह कुछ चंचल और बाचाल परन्तु निष्कपट रही । कुंए से पानी निकाल कर पीने के लिए रघुनाथ प्रसाद को कहा गया। वह कभी पानी कुएं से निकाला तो था नही, क्या करता ? वह लड़की प्रकृत चापल्यवश उससे परिहास में कहा " इस बुद्धू के सामने कौन लंहगा पसारेगी और हँसी का वातावरण गूँज उठा । वह बेचारा अवाक । उस लड़की ने उसे जलपान कराकर उसकी श्रान्ति निवारित की । रघुनाथ प्रसाद अपने विवाह के सम्बन्ध में गाँव आया था । लेखक ने कथा - संयोजन चातुर्य से उसकी होने वाली पत्नी से अनजान में ही हास - परिहास करा दिया । यह भगवन्ती वही लड़की थी, जिसका विवाह रघुनाथ प्रसाद से निश्चित हुआ था । इस रहस्य का भेदन विवाहोपरान्त ही हो सका ।

रघुनाथ प्रसाद भी उसे, इस बुद्धू के सामने कौन लंहगा पसारेगी वाक्य की आवृत्ति कर कर के परिहास भाव से चिढ़ाता किन्तु यह परिहास दोनो के निश्छल अनुराग का ही द्योतक था। अन्त में दोनो एक दूसरे के प्रति समर्पित हो गये ।

गुलेरी जी भारतीय संस्कृति के कथाकार हैं । दोनो उसने कहा था" और बुद्धू का काँटा" दो पृथक- पृथक परिस्थिति परिवेश, घटना-संघटन से अनुप्राणित हैं । जहाँ प्रथम कहानी , प्रथम विश्वयुद्ध में युद्धरत भारतीय सैनिकों की समरसंस्कृति का परिवेश भी भारत की शिव संस्कृति अक्षुण्ण रखने वाला लहना सिंह जैसे निर्मल चरित-पात्र का आदर्श प्रस्तुत करती है वहीं दूसरी कहानी तत्कालीन निश्छल ग्रामीण जीवन में जीने वाले जन समुदाय का हास-परिहासमय जीवन कला का अंकन उपस्थित करती है ।

ज्वाला दत्त शर्मा :-

बीसवी शती में द्वितीय दशक के कहानी लेखकों में श्री शर्मा जी का प्रतिष्ठापूर्ण स्थान है । इनका दृष्टिकोण अन्य कथाकारों की अपेक्षा उदार तथा सुधारवादी रहा है। द्वितीय दशकारम्भ एवं मध्यावधि पर्यन्त इनकी आधदर्जन से अधिक कहानियां प्रकाशित हुई । 1913 में "विधवा और "तस्कर" कहानियों के पश्चात् सन् 1916 को "सरस्वती पत्रिका के विभिन्न अंकों में " अनाथ बालिका", विरक्त विद्यानान्द" स्वामी जी" आदि कहानियां छपीं ।

प्रथम कहानी " विधवा" ही शर्मा जी का दृष्टिकोण उजागर कर देती है । समस्या का उपस्थापन तथा निराकरण सूत्र का अन्वेषण रूढ़िवादिता के विरोध में सशक्त- स्वर सुधारवादी विचारधारा आदि । राधाचरण के चाचा - चाची विधवा पार्वती को अनेकशः प्रताड़ित करते रहते जब कि वह दिनारम्भ से दिवसान्त तक समस्त गृहकार्य पूरी तत्परता से पूरा करने में किंचिदपि असावधानता नहीं करती थी, मृदुभाषी और सुष्ठुव्यवहार । बेचारी पार्वती जब प्रताड़ना की सीमा न सहन कर सकी तो विवश होकर अपने चचेरे भाई सुखदयाल का आश्रय ग्रहण किया । वहाँ सुखदयाल ने उसे शिक्षा की ओर अभिमुख किया, इस प्रकार वह शिक्षित होकर असहाया पार्वती एक विद्यालय में अध्यापिका पद पर नियुक्त हो गयी । अब वह पूर्णतः स्वावलम्बी बन गयी लेखक ने कहानी में समस्या उपस्थापन तथा निदान दोनो प्रतिस्थापित किया है ।

ज्वाला प्रसाद जी कुछ सीमा तक आर्य समाजी आन्दोलन से प्रभावित होकर अपनी विचारधारा सुधारवादी दृष्टिमूलक बनाने में पीछे न रहे । ऐसे उदारवादी दृष्टिकोण का सहज आभास हमें उनकी दो कहानियों - विरक्त विज्ञानानन्द तथा मिहनताना में प्राप्त होता है। कहानी विज्ञानानन्द में सुखानन्द अति उदारभावी चरित हैं । वह अपनी पुत्री को सामान्य शिक्षा प्राप्त करा, उसे विवाहित कर देना उचित समझते हैं । विचारणीय है कि वह पारम्परिक जातिबन्धन को समाज के लिए अभिशाप है स्वीकारते हैं । ऐसी कट्टरता को वह

निर्मूल कर देना चाहते हैं । उन्होंने स्वयं बीस विस्वावाले शुकुल होकर भी अपनी पुत्री को पाँच विश्वा की प्रतिष्ठा वाले पाठक आस्पदी राजीव के साथ विवाहित करना अनुचित नहीं समझा । इसी प्रकार कहानी "मिहनताना" में उन्होंने स्थापित करने का प्रयास किया है। कि सामाजिक बुराइयों के निराकरण का मुख्य साधन शिक्षा में प्रगति होनी अनिवार्य हैं । मिहनताना कहानी में पण्डित शिवरतन बाजपेयी अपनी पुत्री को सामान्यतः भाषा, गणित आदि विषयों में शिक्षित कर देना पर्याप्त स्वीकारते हैं । दूसरी ओर उनका बेटा रामरतन जो उच्च-शिक्षा प्राप्त युवक है का विचार है कि बिना उच्च स्तरीय अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किए मनुष्य विकास के क्षेत्र में अग्रसर नही हो सकता । स्पष्ट है कहानीकार देश की तत्कालीन परिस्थितियों में विकास करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करना संगत और लाभप्रद मानता है । उनका मत है - यदि कोई मनुष्य किसी भाषा के बुरे साहित्य को पढ़कर अपने आचरण को बिगाड़ ले तो उसमें उस भाषा का कुछ भीअपराध नहीं है[1]।

ज्वाला प्रसाद जी को यदि समस्या कथाकार की संज्ञा दी जाय तो अनुचित नहीं क्योंकि उनकी कहानियों में प्रायः कोई न कोई समस्या अवश्य उपस्थित हो गयी है । उनके निराकरण का सूत्र उपस्थित करके

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली:भाग 3/पृष्ठ 485

सामाजिक सुधार की आवश्यकता पर बल दिया गया है । सामाजिक परिवेश का अंकन प्रायः सर्वत्र सफलपूर्वक हो सका है । यह सामाजिक कथाकार हैं । चरित्रांकन की दृष्टि से हम शर्मा जी को सशक्त नहीं कह सकते । जैसा कि श्री चन्द्रधर गुलेरी अपनी कहानियों में पात्रों के चरित्र-चित्रण में उपस्थित होते हैं ।

जी० पी० श्रीवास्तव :-

इसी उन्नीसवां शती के द्वितीय दशकीय कथा-लेखकों में गंगा प्रसाद श्रीवास्तव भी एक प्रमुख रहे । 1911-1915 की अवधि में उनकी "पिकनिक", "दिलबहलाव", मास्टर साहब" मिस्टर लतखोरी लाल", एवं स्वामी चौखटानन्द" कहानीयां प्रकाशित हुई । श्रीवास्तव जी अपनी कहानियों के लिए प्रायः अप्रचलित अस्वाभाविक सन्दर्भों के माध्यम से हास्यरस का अवतरण करते, ऊबड़-खाबड़ वन प्रान्तर मध्य प्रस्तर- खण्डों की छाया से "आर्द्र कलकल ध्वनि की किल किलाहट विखेरते परिलक्षित होते हैं । इनकी कहानी मिस्टर लत-खोरी लाल" में पाश्चात्य के अन्धानुकरण पर तीखा किन्तु शिक्षाप्रद सांस्कृतिक व्यंग को हास्य - रस- घोल में पीकर स्वस्थ सुधर मानस होने के लिए प्रेरणा देती है ।

बीसवीं शती की द्वितीय शतकावधि कहानी लेखन की दृष्टि से उसे "साहित्यांश" रूप में प्रतिष्ठित करने का बीजारोपण करने में सफल हुई । यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए, कारण यही वपित बीज

शती के मध्य तक अंकुर ग्रहण कर पल्लवित हो, मदिर थपकी की प्रतीक्षा में था कि पुष्पित हो सौरभोच्छवास से युग को सान्द्र कर सके, यह अवर बीसवीं शताब्दी ने प्रदान किया ।

:: साहित्यांग : उपन्यास ::

भारतीय साहित्य की कथाविधा सदा से समृद्ध रही है । प्राचीन साहित्य परम्परा की "कादम्बरी", दशकुमारचरित", हर्षचरित एवं तिलकमंजरी आदि आख्यानक काव्य अपनी प्रबन्धात्मकता के कारण गद्य साहित्य विधा उपन्यास यदि नहीं भी माने जाय तो भी हम अवश्य आख्यानात्मक कथा संघटन से विभूषित ये रचनाएं इस विधा के लिए उपजीव्य सूत्र अवश्य स्वीकार करेंगे । इन आख्यानात्मक काव्यों की प्रकृति में साम्य होने पर भी आधुनिक उपन्यास विधा में विभेदा-त्मक तत्व का आरोपण आलोचक एक मात्र इसका विकास पाश्चात्य {अंग्रेजी} नावेल शैली के समानान्तर होने से करते हैं। आधुनिक उपन्यास विधा का किन्चिद स्वरूप हम भारतेन्दु युगीन रचनाओं में परिलक्षित मिलता है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित पूर्ण प्रकाश नामक उपन्यास इस आधुनिक उपन्यास विधा की कसौटी कहाने का प्रथम अधिकारी हैं । इसमें पूर्ण प्रकाश नायक है और चन्द्रमा नायिका । चन्द्रप्रभा का विवाह ढुण्ढिराज नामक एक वृद्ध से हुआ था । वृद्ध विवाह के दोष और कामनाओं की शिक्षा का समर्थन इस उपन्यास का प्रधान उद्देश्य

है । लेखक ने व्यंग और कटाक्षों का भी आश्रय लिया है । इस उपन्यास में भारतेन्दु ने राजनीति के नये अभ्युदय का सन्देश दिया और दीर्घकाल से चली आती हुई सड़ी गली रूढ़ियों का विरोध किया ।[1] इसी कालावधि का उपन्यास है- लाला श्रीनिवासदास - लिखित "परीक्षा गुरु" । इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अंग्रेजी तकनीक पर प्रथम मौलिक उपन्यास स्वीकारा है । सन् 1886 में ही तीन उपन्यास प्रकाश में आये, शेष दो थे - बाबू राधाकृष्णदास का निःसहाय हिन्दू" पण्डित बाल-कृष्ण भट्ट का नूतन ब्रह्मचारी" । भट्ट जी दूसरा उपन्यास " सौ प्रजान और एक सुजान सन् 1892 में प्रकाशित हुआ । इन उपन्यासों की पृष्ठ-भूमि समाजिक तथा निहित दृष्टि सुधारवादी है ।

परीक्षा गुरु :-

यह एक यथार्थवादी उपन्यास है, इसमें आदर्शोन्मुखी भावों का प्राय: समावेश न के समान हैं । इसके प्रथम मौलिक उपन्यास कहे जाने का कारण सम्भवत: यह है कि इस कृति पर अंग्रेजी उपन्यास शिल्प एवं शैली का प्रभाव स्पष्ट है साथ ही कथा संघटन में समसामयिक समाज का अच्छा प्रतिफलन हो सकता है । लेखक श्री निवास दास ने निवेदन में लिखा - " इस उपन्यास में उसने दिल्ली के कल्पित रईस का चित्रण उतारा और उसे स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । x x x मेरे जान इस रीति से कोई नहीं लिखी गई इसलिए अपनी भाषा में यह नयी चाल की पुस्तक होगी । x x

संस्कृत अथवा फारसी अरबी के कठिन-कठिन शब्दों से बनायी गयी भाषा के बदले दिल्ली के रहने वालों की साधारण बोल-चाल पर ज्यादा दृष्टि रखी गयी है। अलबत्ता जहाँ कुछ विद्या विषय आ गया है। वहाँ विवस होकर कुछ संस्कृत आदि लेने पड़े।[1] स्पष्ट है कि लेखक ने उपन्यास लिखने का अपना उद्देश्य कथानक का मूलबिन्दु संकेतित करने के साथ ही भाषा विषयक अपनी नीति भी प्रकट कर दी है। उपन्यास का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है।-

"मदन मोहन" नामक एक रईस इस उपन्यास में चित्रित किया है। संपत्ति शाली होने के कारण उसकी एक बड़ी मित्र मण्डली है। सभी मित्र प्राय: पूर्णरूप से स्वार्थी हैं। उनका उस पर इतना अधिक प्रभाव है कि हितकामी मित्र उसे नियंत्रित नही कर पाते। स्वार्थी मित्रों के वशीभूत वह कुपथगामी बन भोगविलास- निमित्त अपने धन को क्षय करने लगा। एक नि:स्वार्थी मित्र ब्रजकिशोर ने उसे सुमार्ग पर लाने के लिए प्राय: प्रयास करता किन्तु असफल ही रहा। अन्तत: मदनमोहन अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट कर चुका। व्यसों की पूर्ति के लिए वह ऋणग्रस्त हो गया। ऋण का भुगतान न कर सकने के परिणाम स्वरूप वह कारागार में बन्द हो जाता है। उसके तथाकथित सभी हितैषी मित्र उसके विलग हो गये। नि:स्वार्थी ब्रजमोहन उसकी सहायता में तत्पर। मदन मोहन की

---

1. परीक्षा गुरु : निवेदन से

पत्नी ने अपने सभी आभूषण देकर उससे पति को किसी प्रकार मुक्त कराने की याचना की । मदनमोहन के पिता का ब्रजकिशोर कृतज्ञ रहा । वह वकील भी था। उसने न्यायालय में मदनमोहन की ओर से तत्परता पूर्वक पैरवी की । उसे सफलता मिली । मदनमोहन को अन्ततोगत्वा ऋण मुक्त कराया और छुड़ा लिया ।"

उपन्यास की कथावस्तु साधारण लघु किन्तु सुगठित है। भाषा कृत्रिमता से दूर । चरित्र-चित्रण विशेष प्रभावक नहीं । मदन मोहन की पत्नी तथा ब्रजकिशोर के चरित्रांकन में लेखक ने अवश्य सफलता प्राप्त की है यत्र-तत्र तथाकथित ﴾स्वार्थी﴿ मित्रों के भी सचिव चित्र उपलब्ध होते हैं । उपन्यास में भाषा शैली तथा कथ्य मुख्यत: शिक्षाप्रद, विविध नीति ग्रन्थों के उद्धरण भी कथन की पुष्टि में समायोजित किए गये हैं ।

नूतन ब्रह्मचारी :-

यह पण्डित बालकृष्ण भट्ट का 1886 में प्रकाशित लघु-उपन्यास है । बालकों में नैतिक आदर्श के प्रति आवृत्त होने की भावना जागृत करना लेखक का प्रयोजन प्रतीत होता है ।- हमारी इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों को अवश्य मालूम हो जायेगा कि हमारे बालकों को पढ़ाने के लिए यह कितना शिक्षा-प्रद है और शिक्षा विभाग में जारी होने से हमारे कोमलबुद्धि वाले बालकों को कितनी उपकारी हो सकती है । लघु कलेवरीय यह उपन्यास उपदेश प्रधान कृति है, इसके द्वारा लेखक

है - विनायक एक सौम्य -सुशील, सच्चरित्र युवक है । यही कथानायक है । उसकी विनयशीलता एवं नैतिकता की प्रशंसा लुटेरों का मुखिया तक करता है- तुम्हारे माता- पिता को धन्य है । निस्सन्देह तुम्हारा सा सुशील बालक पाकर वे बड़भागी है । वे आये तो उनसे कहना कि आज तीन डाकू जिन्होंने बड़े - बड़े बहादुरों से हथियार रखवा लिए थे । यहाँ लूटने को आये थे लेकिन तुमने और उनके साथ ऐसी अच्छी रीति से बर्ताव किया कि उनके सरदार का मन फिर गया और उनलोगों की हिम्मत लूटने की न पड़ी ।[1]

सौ अजान एक सुजान :-

यह भट्ट जी का दूसरा उपन्यास है । इस उपन्यास में भी लाल श्रीनिवास दास के "परीक्षा गुरु" की भाँति समस्त कथानक अन्तर्निहित उपदेशात्मक प्रवृत्ति से संश्लिष्ट है। सेठ हीराचन्द के दो लड़के, दोनो बुरे व्यसनी जानों के संपर्क आकर पूर्णतः कुपथसेवी हो जाते हैं । विपत्ति ग्रस्तता की स्थिति में उनकी रक्षा एक सुजान मित्र करता है । उपन्यास एक पात्र बहुल कृति है । कथानक की दृष्टि से इतने अधिक

---

1. नूतन ब्रह्मचारी : निवेदन से द्वितीय संस्करण - पृष्ठ-24

पात्र पाठक के लिए निश्चित ही उबाऊ कहे जायेंगे । ऐसी स्थिति में न तो लेखक अपने पात्रों का समुचित चरित्रांकन कर सका है । और न पाठक ही उनके चरित्र से परिचित हो पाता है । एक पात्र बसन्ता का परिचय इस प्रकार लेखक ने दिया है- नाम इसका बसन्तरमया पर लोग इसे बसन्ता कहा करते थे । नाक पसड़ी, होठ मोटे, आँख घुच्चू सी माथा तंग बीच में गट्ठेदार, चेहरा गोल, रंग काला, मनों अंजनगिरि का टुकड़ा हो । पढ़ना लिखना तो इसके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है।[1]

समाज विभिन्न रूढ़ियों तथा परम्परागत अन्धविश्वासों से ग्रस्त विषम परिस्थितियों से आक्रान्त था । उनसे समाज को मुक्ति दिलाने का एक माध्यम कहानी और उपन्यास बने । लेखक अपनी रचना द्वारा समाज की किसी समस्या प्रस्तुत कर, उसके निराकरण परिप्रेक्ष्य में कथा-उपन्यासगत पात्रों के चरित्र का अंकन करता । उपदेशात्मक तथा सुधारवादी दृष्टिकोण की प्रतिस्थापना में लाला श्रीनिवासदास तथा पंडित बालकृष्ण भट्ट उल्लेख नाम हैं । इसी सुधारवादी विचारधारा को गतिशील किया पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय के दो उपन्यास --

अधखिला फूल :
----------- यह श्री उपाध्याय जी का तत्कालीन सामाजिक-भ्रष्टाचार

---

1. सौ अजान एक सुजान / पृष्ठ 23

को उजागर करने वाला उपन्यास है । अन्धविश्वास पोषित धर्माचरण मनुष्य को किस प्रकार संकटापन्न कर देता है, यही उपन्यास का कथ्य है । कामिनी मोहन एक भोगविलासी, व्यभिचारी व्यक्ति अपनी अभिलाष की पूर्ति के लिए कितने जाल बुनता है, इसे लेखक ने अत्यन्त चातुरी से समेटा है । कामिनी मोहन की दृष्टि देवहूती नामक युवती पर है । वह उसको वशवर्ती बनाने और प्राप्त करने के लिए मालिन बासमती और हरलाल नामक ओझा को धन का लोभ देकर अपने पक्ष में करता है । देवहूती के रोगग्रस्त भाई के स्वास्थ्य लाभार्थ हरलाल पाखण्ड से अपने सिर पर देवी का आह्वान करता है।[1] उसी के मुँह से मन्दिर में एक मास- पर्यन्त निरंतर अधखिला चढ़ाने का आदेश दिलवाता है । पार्वती धर्मभीरु स्त्री है, पुत्र का कल्याण चाहती है, इस कारण ओझा पर उसका अतिविश्वास है । देवी मन्दिर में फूल चढ़ाने का दायित्व वह पुत्री देवहूती को सौंपती हैं । मालिन बासमती देवहूती से मन्दिर में देवी के लिए अधखिला फूल चढ़वाने साथ ले जाती है । पूर्व निश्चय के अनुसार कामिनी मोहन उपस्थित हो जाता है । देवहूती उसके बिछाये जाल में आबद्ध हो जाती है । इस प्रकार मिथ्या धर्म और अन्धविश्वास की परिणति का यह चित्रण समाज के लिए उनसे दूर रहने की प्रेरणा देता है ।

---

1. अधखिला फूल / पृष्ठ 67

ठेठ हिन्दी का ठाट :-

इस उपन्यास में लेखक ने धार्मिक तथा सामाजिक कट्टरता पर तीखा प्रहार एवं उनके परिणाम स्वरूप विविध हानियों की ओर जनमानस को आकृष्ट करने का प्रयास किया है। लेखक ने जातीय उच्चता की अपेक्षा चारित्रिक उत्कृष्टता और नैतिकता को अधिक महत्व देकर उसके श्रेयस्कर परिणाम उपस्थित किया है। देववाला का पिता उच्च ब्राहमण होने के कारण अपने से निम्नकुल में उसका विवाह नहीं करता । वह अपनी पुत्री कुलीन रमानाथ से विवाह देता है । रामानाथ चरित्र भ्रष्ट व्यक्ति था। परिणामतः उसके घर वह पुत्र देववाला घोर यातनाएं सहती हैं । तथा असमय ही मृत्यु का वरण कर लेती है ।

"हरिऔध" जी के दोनो ही उपन्यास चरित्रांकन की दृष्टि से सामान्य कोटि के हैं । "अधखिला फूल" की देवहूती के चरित्रांकन मे कुछ सीमा तक प्राणवत्ता का संचार हे पाया है । अन्यथा पात्रों का समावेश मात्र कथाक्रम की पूर्ति प्रतीत होती है । मालिन बासमती धन के लोभ में आत्मा बेंचकर एक नारी को पथभ्रष्ट करने में कामिनी मोहन की अभिलाषा पूर्ति का साधन मात्र है । पात्रों के चारित्रिक विकास पर कोई दृष्टि नहीं है गयी । मानसिक अन्तर्द्वन्द के अभाव में चरित्र का

उज्ज्वल पक्ष नहीं पकटता और यहाँ इसका अभाव है । ठेठ हिन्दी का ठाट" में देवनन्दन देववाला से अनुराग बद्ध हैं । उसका विवाह जब रमानाथ से निश्चित होता है, तो उस की माँ उसके और देवनन्दन की अनुरागभाव को जानकर भी अपने पति के निर्णय का विरोध नहीं कर पाती ।

इस कालावधि के उपन्यास मुख्यत: उपदेशप्रधान और सुधारवादी दृष्टिकोण पर केन्द्रित थे अत: कथावस्तु की संघटनात्मकता चरित्रांकन कथागत - उत्सुकता और रोचकता आदि तत्वों के प्रति लेखक का ध्यान अल्प रहा है । इनमें हमें सामाजिक नैतिकता, पारिवारिक आचार -विचार विषयक उपदेश ही प्राप्त होते हैं । नीति धर्म पाप पुण्य एवं सदा- चार विषयक दृष्टि भी प्राय: पात्र विशेष की नहीं अपितु परम्परा लेखक की रही ।

प्रेमचन्द्र से पूर्व उन्नीसवी शती का अन्त एवं बीसवी शताब्दी का प्रारम्भ ऐसी कालावधि थी, जब हिन्दी कथा साहित्य में ऐय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों का अधिक प्रभाव था। इनमें अद्भुत और असाधारण घटनाओं की ऐसी रेल पेल है कि पाठक का चित्र चक्कर खा - खा कर आगे बढ़ता जाता है , उसके कथानक के गठन और चरित्र के विकास की बात याद ही नहीं रहती । अतिप्राकृतिक अद्भुत और असाधारण घटनाओं से - आश्चर्यजनक परिस्थितियों का निर्माण तिलस्मी कथानकों का प्रधान आकर्षण था । x x x इन उपन्यासों ने हिन्दी जनता के चित्र को ऐसे

---

1. ठेठ हिन्दी का ठाट पृष्ठ - 27

ही मादक वातावरण में डाल रखा था। उपन्यास के वास्तविक रूप से तो इन्होने इस जनता को परिचित ही नही कराया, परन्तु आधुनिक उपन्यासों की जो सबसे बड़ी विशेषता – मनोरंजन है उसे प्राप्त करने की दुर्दम लालसा इन्होने अवश्य उत्पन्न कर दी।[1] मीर हम्जा के तिलस्मी दास्तानों की भाँति अनेकशः फारसी तथा उर्दू की रचनाओं से प्रभावित हमारा लेखक समाज प्रभावापन्न हो एतादृश रचनाधर्मिता में प्रवृत्त हुआ। जहाँ घटना वैचित्र्य, कौतूहल, चमत्कार, अति-प्राकृत घटना विस्तार में रम गया। इस कोटि के उपन्यास लेखकों में अग्रणी देवकीनन्दन खत्री की "चन्द्रकान्ता", चन्द्रकान्तासन्तति," भूतनाथ" क्रमशः 1890 से 1908 की कालावधि में प्रकाशित हुई। रामलाल वर्मा का पुतली महल" भी इसी कोटि का उपन्यास है। तिलस्मी उपन्यासों की ही गति-विधि पर जासूसी उपन्यास भी इस काल में लिखे गये दोनो ही उपन्यासों की विधा प्रकारान्तर से साम्य है। अन्तर केवल इतना कि द्वितीय प्रकार के इन जासूसी उपन्यासों में किन्चिद जीवन की यथार्थता के चित्रण में प्राप्त होते हैं अन्यथा वही घटना वैचित्र्य, चमत्कार एवं दुर्बलताए समाविष्ट है। इस कोटि के लेखकों में गोपाल राम"गहमरी" और मथुरा प्रसाद खत्री प्रमुख है। इनके उपन्यासों में क्रमशः "अद्भुत लाश" झण्डा डाकू तथा " आनन्दमहल" प्रख्यात हैं। तिलस्मी एवं जासूसी के ही अनुगामी

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली : तृतीय भाग/पृष्ठ 486

कुछ अन्य उपन्यास भी लिखे गये, जिनका एकमात्र मनोरंजन सामग्री प्रस्तुत करना रहा । ऐसे उपन्यासों की कोटि में गोपाल गहमरी लिखित गोबर-गणेश "संहिता" बेचन शर्मा उग्र का शैतान मण्डली और गुलाबराय का लिखा ठलुआ क्लब परिगणित हो सकते हैं ।

इन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त पौराणिक, धार्मिक तथा विज्ञान आदि उपन्यास विषयक उपन्यास लिखे एवं इतर भाषाओं से अनूदित भी किए गये - कहने का अर्थ यह कि उस समय समसामयिक आकांक्षा, आवश्यकता आदि के परिप्रेक्ष्य में रचना धर्मिता एक विशाल व्यापक क्षेत्र को अपने कर्म में समेटे हुई थी ।

§1§ धार्मिक आस्था के प्रति सामाजिक प्रवृत्ति को उद्वेलित करने पुरा आख्यानों की नैतिकता, लोकेषणा सार्वजनीनता को अक्षुण्ण रखने के लिए भी तत्कालीन रचनाधर्म प्रवृत्त हुआ उनकी यह रचनाधर्मिता संस्कृत साहित्य के प्राचीन कथा साहित्य से उपजीवित होकर प्राणवन्त हुआ । तिलस्मी तथा जासूसी औप-न्यासिक कृतियों के घटना वैचित्र्य जन्य चमत्कारपूर्ण मनोरंजकता से प्रभावित जनमानस के लिए पौराणिक कथा प्रधान नैतिक प्रतिष्ठामूलक उपन्यासों की ओर अल्प ही आकर्षित हो सका । परिणामतः इस विधा की कृतियों का क्षेत्र व्यापक नहीं बन सका । तथापि बीसवीं शती की तृतीय दशकावधि में प्रकाशित श्री द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी लिखित "सावित्री -

सत्यवान, तथा रामचरित उपाध्याय का उपन्यास "देवी द्रौपदी" इस विधा में उल्लेखनीय हैं ।

(2) ज्ञान वर्धक उपन्यास के लिए विज्ञान विषय कथानक का चयन करके कुछ लेखकों ने एक सार्थक प्रयास किया । इन उपन्यास की प्रमुख विशिष्टता यह थी कि विज्ञान विषय की सत्यता के साथ - साथ लेखक उसमें रोचकता का समावेश करने और पाठक की मानसिक एकाग्रता अविच्छिन्न रह सके । इनमें कल्पना का स्वच्छन्द व्यापार, तिलस्मी अथवा जासूसी भावों का भी सहारा लेता रहा । उपन्यास कला का तो कदापि लक्षण नही ऐसे उपन्यासों में विनय गोपाल बकशी लिखित "चन्द्रलोक की यात्रा" का नामोल्लेख किया जा सकता है ।

(3) कुछ लेखकों का ध्यान हिन्दीतर उत्कृष्ट कथा साहित्य की ओर भी गया । उनकी कथावस्तु का भारतीय पाठक को परिचित कराने के उद्देश्य से कतिपय मनोरंजक एवं ज्ञानपोषक अंग्रेजी तथा बंगला भाषी उपन्यासों के अनुवाद भी प्रकाशित हुए । इस क्रम में - अंग्रेजी के " टाम काका की कुटिया" , लन्दन रहस्य), फारसी से "तिलस्मेहोशरूबा" तथा बंगाल में श्री बंकिम बाबू", शरच्चन्द्र एवं रवीन्द्रनाथ के उपन्यास हिन्दी में अनूदित होकर प्रकाशित हुए । हिन्दी में पण्डित प्रतापनारायण मिश्र और पंण्डित राधाचरण गोस्वामी ने बंगाली उपन्यासों का

अनुवाद आरम्भ किया। बाद में बाबू गदाधरसिंह ने " बंग विजेता" और " दुर्गेशनन्दिनी" का अनुवाद किया । इसके बाद बंगाली उपन्यासों के अनुवाद का तांता बंध गया ।[1] इस अनुवाद साहित्य के परिणाम स्वरूप हिन्दी पाठक के हृदय में उन जैसे मौलिक हिन्दी उपन्यास का अभाव अब कष्टदायी हो गया और इस कारण हिन्दी लेखकों का ध्यान सशक्त उपन्यास रचना की ओर गया ।

§5§ जिस प्रकार तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यासों में कल्पना का आश्रय ग्रहण कर कतिपय लेखकों ने घटना एवं कथा चमत्कार की सृष्टि की उसी प्रकार कुछ लेखक ने न केवल कल्पना अपितु तज्जनित अनुपम भावलोक की सुघर सृष्टि कर काव्यमयी भाषा प्रधान उपन्यासों की रचना भी प्रेमचन्द के प्रादुर्भाव से पूर्व करते रहे । इन उपन्यासों लेखकों का उद्देश्य भावाभिव्यंजक परिदृश्य का उपस्थापन ही परिलक्षित होता है । कथा तत्व एवं चरित्रांकन आदि पर ध्यान न देकर लेखक कवित्वपूर्ण भाषा सौष्ठव का चमत्कार उपस्थित करता था । पात्र भी भावुक इस विधा का सर्वाधिक उल्लेख उपन्यास श्री ब्रजनन्दन सहाय द्वारा लिखित है -

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली : भाग-3/ पृष्ठ 48

सौन्दर्योपासक :-

यह एक भावात्मक रागप्रधान कल्पना प्रसूत भाव - जगत के सु-सुघर नन्दन कानन विमल विलास लासमात्र हाससौरभ बिखेरने वाला उपन्यास है । घटना वस्तु से किन्चिद प्रयोजन नही प्रतीत होता । लेखक ने एक युवक को गालती नामक बाला से अनुरागबद्ध औरउसी बाला की बड़ी बहिन से उसका विवाह वर्णित किया है । न तो मालती के सौन्दर्य सौरभ से आबद्ध युवक का भ्रमरमन और न मालती का हृदय अपने राग भाव प्रकट करते हैं एवं न किसी अन्य व्यापार के ही माध्यम से उनकी स्थिति का परिज्ञान किसी को हो पाता है । मालती यक्ष्मा से पीड़ित होकर मृत्यु का वरण करती है, दूसरी ओर उसकी बड़ी बहिन यह जानकर कि उसका पति बहिन मालती से अनु-रागबद्ध रहा है, और मालती की मृत्यु भी हो गयी तो वह भी मानसिक पीड़ा से आक्रान्त अन्तत: मर जाती है । अंतत: नायक अकेला अपने भावात्मक राग जनित पीड़ा सहने के लिए शेष रह जाता है ।

यह समग्रत: घटना शून्य उपन्यास है । लेखक की आ त्म स्वीकृति, इसमे प्रधानविषय मन के भाव एवं ज्ञान हैं घटनाएं अनुषंगिक व्यापार हैं ।पाठको को किसी प्रकार का उपदेश देना अथवा सामाजिक कुरीतियों का सुधार करना लेखक का उद्देश्य नहीं है । वह अपने नायक की प्रेमकथा उसी के मुख से पाठकों को सुनवाता है । लेखक ने निज भावाभिव्यक्ति - हेतु

---

1. सौन्दर्योपासक पृष्ठ - 234-236

उपन्यास में एक पात्र "महात्मा" का अवतरण करता है और उसी से प्रेम की श्रेष्ठता तथा सार्थकता का व्याख्यान करता है । "ध्यान रखो प्रेम में भय नही होता, जहाँ भय है, वहाँ प्रेम नहीं । प्रेम के राज्य में भय कदापि स्थान नही पाता । × × × निस्सन्देह मानव हृदय की सृष्टि प्रेम ही के लिए हुई, प्रेम ही मानव जीवन का उद्देश्य एवं कर्तव्य है । प्रेम ही के उद्रेक से इसकी रचना आरम्भ हुई है । [1]

श्यामा स्वप्न :-

ठाकुर जगमोहन सिंह द्वारा लिखित यह उपन्यास भी भावात्मक राग प्रधान उद्वेगों से परिपूर्ण है । भाषा काव्यात्मक और भाव ही नहीं सम्पूर्ण उपन्यास ही कल्पना की सृष्टि है । प्रकारान्तर से यह चार स्वप्नों का काल्पनिक वर्णन है । रात्रिक के चारों प्रहरों में चार स्वप्न देखना और वह भी परस्पर सम्बद्ध । प्रथम प्रहर में - युवक कमलाकान्त देखता है कि किसी श्यामा नामक लावण्यवती युवती से राग बद्ध होने के कारण कारागार में भेजा जाता है । वहाँ वह कारागार की दीवारों पर अंकित कोई मंत्र के प्रभाव से किसी पिशाच की सहायता प्राप्त कर कारागार से मुक्त

हो जाता है । पुनः उसी क्रम में वह देखता है कि उसकी प्रेमिका "श्यामा" एक अन्य पुरुष श्याम सुन्दर से अनुरागबद्ध है । दूसरे प्रहर में -"श्यामा अपने पूर्व प्रणयी कमलाकान्त को देखकर कुछ घबराहट से पीड़ित है किन्तु अपने नव अनुराग एवं अनुरागी के सम्बन्ध में स्पष्टतः कथन करती है । इसके पश्चात् प्रारम्भ होता है वियोगावस्था विषयक रीतिकालीन परम्पराबद्ध विविध रूपों में वर्णन । वर्णनों के मध्य प्रायः नारी प्रकृति तथा उसके चरित्र पर आक्षेप वचन भी पढ़ने को प्रस्तुत है । इसी संक्षिप्त कथा संकेत से स्पष्ट परिलक्षित है कि उपन्यास में किसी कथा वस्तु का विन्यास संघटन, पात्रादि के चारित्रिक विकास का सर्वथा अभाव है ।

"श्यामा -स्वप्न" में भी सौन्दर्योपासक -"अनुगामी स्वच्छ अनुरागाभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं । भावोद्वेलित प्रणयानुभूति का कल्पना -प्रसूत विविध परिप्रेक्ष्य और काल्पनिक वातावरण स्थिति परिस्थिति की निर्मिति के साथ ही कल्पनाभावित वियोगावस्था का चित्रण मर्म को संस्पृष्ट करने वाला है । रागात्मकता की पृष्ठिभूमि पर पल्लवित कल्पना की अतिशयता में भी मानवीय प्रकृति के उतार - चढ़ाव अवश्य है । श्री ब्रजरत्नदास के शब्दों में - "श्यामा - स्वप्न" ठाकुर साहब की अत्यन्त भावुकतापूर्ण कल्पना है और यह कल्पना औपन्यासिक ढंग से लिखी एक प्रकम कहानी है। इसमें ठाकुर साहब ने कुछ आपबीती बातों का पुट देकर इसे कोरी कल्पना भी नहीं रहने दिया है । x x x रमणीय विन्ध्यातटी के निवासी और प्रकृति के विभिन्न भावमयी रूप माधुरी के जन्मतः पर्यवेक्षक होने से इन्हें उसके प्रति सच्चा प्रेम था, अनुभूति थी, प्रेम का

संस्कार था और उनमें वर्णन करने को आसाधारण शक्ति थी ।[1]

§5§ इस कालावधि की एक धारा ऐसी भी थी, जिसका उद्गम सामाजिक परिस्थियों तथा प्रेम विषयक विविध पक्षों के सरोवर हुआ, इस धारा के प्रथम स्रोत- बिन्दुओं का ही अमुख प्रेमचन्द को अमर बनाने का सूत्र संजोये था । इस धारा के तत्कालीन लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी तथा मेहता लज्जाराम शर्मा के उपन्यास विशेषरूप से परिलक्षनीय है । किशोरी लाल की प्रतिभा बहुमुखी थी । वे अपने समय में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी तथा जासूसी सभी प्रकार के छोटे-बड़े 65 उपन्यास लिखें ।[2]

<u>माधवी - माधव व मदन-मोहनी :</u> यह उपन्यास प्रतिष्ठित सम्प्रत्तिवान कुटुम्बों में प्रच्छन्न रूप से चल रहे भ्रष्टाचार व्यापार की कथा संजोये हुए हैं । दिल्ली समृद्धिशाली लब्ध प्रतिष्ठ लाला, रामप्रसाद की विधवा भाभी जगनादे से उन्ही के दीवान हरिहरप्रसाद का अवैध सम्बन्ध है यह सम्बन्ध अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए दीवान ने स्थापित किया । सतत् अप्रतिबन्धित स्वच्छन्द प्रणय-

---

1. प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार / पृष्ठ 41 से

2. माधवी -माधव व मदन - मोहिनी / पृष्ठ 183

व्यापार का परिणाम जमनादेई गर्भ धारण करती है । कुल प्रतिष्ठा के रक्षणार्थ गोपनीय रीति से काशी में उसका गर्भ-पात कराया जाता है । दीवान हरिहर प्रसाद धन के बल पर अनेक गुण्डे और बदमाश पाल रखे हैं । अवसर पाकर वह जमना-देई के सौतेले पुत्र मदन मोहन का अपहरण करवा देता है । यह उसकी एक दूरगामी दृष्टि थी कि पुत्र के पश्चात लालराम प्रसाद का भी किसी षडयंत्र से अन्त कर समस्त सम्पत्ति का स्वामी बना जा सकता है। इसी कुल से सम्बद्ध एक अन्य विधवा "सरस्वती" जो लाला राम प्रसाद की साली है का प्रणय व्या-पार माधव नामक एक ब्राहमण युवक से चलता है दोनो ही-जमनादेई तथा सरस्वती अपनी काम पिपासा की शान्ति के लिए दीवान हरिहर प्रसाद और ब्राहमणयुवक उस माधव को वशवर्ती बनाए हुए हैं । लेखकीय मन्तव्य स्पष्ट है कि ऐसी कु-कृत्य की दोषभाजन स्त्रियां ही हैं ।

माधवी - माधव उपन्यास का पात्र माधव जमनादेई पापाचार के परिणाम को उदाहृत कर सरस्वती को निष्ठा एवं संयम पूर्वक जीवन यापन की प्रेरणा देता है । वह लड़कियों के लिए अधिक शिक्षित होना भी उचित नहीं मानता । माधवी के पिता द्वारा मिडिल तक शिक्षित होने पर विद्यालय से उसका नाम कटवाना

उसे अच्छा लगता है । जो लोग यह देख रहे हैं, अयोग्य स्त्री शिक्षा के ही कारण एक बंगालिन" एक पंजाबी की पत्नी बनती हैं, एक गोरी नारी एक हिन्दू नरेश की पटरानी बनती है, और एक ब्राह्मणी एक शूद्र की जोरू बनती है, तो यह कहना पड़ेगा कि स्त्रियों को उच्च शिक्षा कभी न देनी चाहिए ।

किशोरी लाल गोस्वामी भारत की प्राचीन सनातन संस्कृति के पोषक हैं। वह धार्मिक कृत्यों पूजा-पाठ, यज्ञादि को सुखमय जीवन का आधार स्वीकारते हैं । "माधव" लाल राम प्रसाद के यहाँ रहता है ब्राह्मण होने के कारण वह या तो स्वयं बनाकर भोजन ग्रहण करता है या ब्राह्मण रसोइया के हाथ का बनाया हुआ । जमना देई के अन्तिम समय में डाक्टर उसे दवा के स्थान पर गंगाजल पिलाने का आदेश देता है । गोस्वामी जी अपनी इस सनातनी विचारधारा को पुष्ट करने के लिए उपन्यास में "सद्" तथा "असद्" पात्रों को समायोजित करते हैं । सद् पात्र सनातनी होने से सुख और असद् पात्र पाप परिणाम से दुःख भागी बनते हैं ।

स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी :-

यह मेहता लज्जाराम शर्मा की उन्नीसवीं शती के अन्तिम दशक की रचना है । श्री शर्मा जी पाश्चात्य सभ्यता के प्रबल विरोधी सुधारवादी विचारधारा के परिपोषक रहे । इस कारण न केवल इसमें अपितु इनके अन्य उपन्यासों बिगड़े का सुधार अथवा सती सुखदेवी" सुशीला विधवा आदि में भी

---

1. माधवी-माधव पृष्ठ-978

पाश्चात्य परम्पराओं, पाश्चात्य शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता, पाश्चात्य विचारधारा पर प्रहार करते हुए उससे भारत की निर्मल सांस्कृतिक परम्परा पर आघात बताया है । संक्षेपतः पहले के दोनों उपन्यासों में भारतीय नवयुवक तथा नवयुवतियों पर प्रभाव करने वाली पाश्चात्य सभ्यता से मानसिक विकृति से सामाजिक प्रदूषण का चित्रांकन हुआ है । पहले उपन्यास की रमा अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवती है । उसको पुरुषों के साथ स्वच्छन्दतः विचरण करने में किंचिदपि आपत्ति नहीं । वह स्वेच्छया अपना विवाह करती है, यही नहीं वह इतनी स्वच्छन्द हो गयी कि उसने क्रमशः तीन-तीन पुरुषों से विवाहित हुई ।

बिगड़े का सुधार अथवा सती सुखदेवी :-

उपन्यास में पाश्चात्य सभ्यता का पक्षधर बनमाली बाबू एम० ए० पास नवयुवक है । पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित सच्चरित्र, सेवा- परायण पत्नी सुशीला सुखदेवी का अनादर करता है । वह अनादृत इस कारण रही कि वह अंगेजी से अनभिज्ञ थी । बनमाली बाबू हिन्दी की निन्दा करते तथा संस्कृत को मृत भाषा कहकर सम्बोधित किया करते । उसके लिए तो सब कुछ अंग्रेजीमय दिखायी पड़ना ही श्रेयस् श्र देने वाला प्रतीत होता । "सुखदेवी उसको रचमात्र भी पसन्द न थी, उसके मस्तिष्क में गोरी मेम का चेहरा ही क्षण प्रतिक्षण कौंधता । अन्ततः उसने होटल की एक नौकरानी से विवाह कर लिया ।

सुशीला विधवा:- लज्जा शर्मा का सनातन धर्म के प्रति प्रगाढ़ आस्था भावनाओं प्रतिमूर्तन है । इसमें नारी के वैधव्य जीवन की करुण गाथा, विधवा की असहायावस्था आदि के यथार्थ चित्रण उपलब्ध होते हैं । विधवा सुशीला का सम्मान कम हो गया । उसकी ननद दुलारी ने कपट करके उसके सभी आभूषणों को लेकर, उसे घर से निष्कासित करवा दिया । उस वैध व्यवस्था के कारण वह अपने भाई के भी घर में असम्मानित और दुःख भाजन बनी । उसकी आश्रय हीनता तथा सर्वत्र अनादरा होती उसे देख भाई उसके पुनर्विवाह पर विचार करता है । लेखक ने उसकी इस भावना को दूषित मान ऐसे कृत्य का विरोध करते हुए आर्यसमाजियों पर व्यंग्य किया है ।[1] शर्मा जी प्राचीन परम्परा के पोषक हैं अतः नारी स्वातंत्र्य को उचित नहीं स्वीकारते । स्त्री को फिसलने से बचाने के लिए परदा प्रणाली है क्योंकि परदे में उन्हें फिसलने का अवसर नहीं मिल सकता है ।[2]

आदर्श हिन्दू :- उपन्यास में शर्मा जी ने तीर्थाटन का महत्व प्रतिपादित किया तथा जन्मना जाति में ब्राह्मण्य को स्वीकारते हैं । प्रकारान्तर

---

1. सुशीला विधवा / पृष्ठ 124
2. वही / पृष्ठ 31

से हम इस उपन्यास को तत्कालीन समाज का इतिवृत्तात्मक आकलन कहा जा सकता है । दूसरे शब्दों में - इसको उपन्यास न कहकर सामाजिक विवरण कहा जाय तो अनुचित न होगा । [1]

शर्मा जी ने अपने उपन्यासों में पात्र संयोजन अपनी सनातन धर्मी विचार-धारा के अनुकूल रखने का पूर्ण प्रयास किया है । सनातनधर्मी आस्था और विश्वास की अतिशयता के कारण उपन्यासों में पात्रों का चरित्रिक विकास एवं उनके क्रिया कलाप कथानक तथा परिस्थिति अनुकूल नही हो पाया है । उनमें अविश्वसनीयता तथा अस्वाभाविकता परिलक्षित होती है । "स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी" एवं बिगड़े का सुधार" में रमा और कमालो बाबू को लेखक ने पाश्चात्य सभ्यता का संजीव मूर्तन स्वीकारा है । सभी पात्र प्रायः उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । उनमें स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास लेशमात्र नहीं मिलता । सुशीला विधवा" में सुशीला की भाभी का व्यवहार अत्यन्त अमानुषिक है ।परन्तु जब वह सुशीला द्वारा रसिक बिहारी की दुष्टता का ज्ञान प्राप्त करती है तो अचानकउसके स्वभाव तथा आचरण में परिवर्तन आ जाता है । कठोर प्रकृति भाभी सहज हृदया बन सुशीला को सान्त्वना देने वाली हो जाती है [2] बिगड़े का सुधार"- उपन्यास में पाश्चात्य

---

1. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास : डॉ० कैलाश प्रकाश/पृष्ठ 154
2. सुशीला विधवा/ पृष्ठ 115

सभ्यता की प्रतिमूर्ति बनमाली बाबू को कट्टर सनातनधर्मानुयायी बनाया गया है । पाश्चात्य नारी के बदले भारतीय नारी की जो रूपरेखा वह प्रस्तुत करता है वह निर्जीव एवं अविश्वसनीय है । उपन्यास में मनुष्य के हृदयगत भावों का न तो अन्तर्द्वन्द के दर्शन होते हैं और न पात्रों को उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के साथ संगमित कर चित्रित करने का प्रयास है । सुखदेवी पति बनमाली बाबू को हर दुर्व्यवहार सहती है, यहाँ तक होटल की नौकरानी से उनके विवाहोपरान्त भी वह सहिष्णु चित्रित की गया है । यह लेखक का एक नितान्त आदर्शवादी दृष्टिकोण के अतिरिक्त कुछ नहीं है । सर्वथा अस्वाभाविक ।

इस प्रकार हिन्दी गद्य साहित्य के मुख्य अंग कहानी तथा उपन्या विधा की प्रेमचन्द से पूर्वकालिक गति विधि का सिंहावलोकन एवं यह लघु विवेचन हमें इस निष्कर्ष पर आरूढ़ करता है, जहाँ हम तत्कालीन कथा साहित्य में प्रमुखतः तीन प्रवृत्तियों - आर्यसमाजी विचारधारा प्रधान सनातनधर्मी आस्थामूलक और सुधारवादी दृष्टिकोण भावी के दर्शन होते हैं । तत्कालीन लेखकों में जीवन विषयक मान्यता का सर्वथा अभाव , लेखन के सम्बन्ध में अपरिपक्व मान्तया, स्थापित दृष्टिकोण का स्खलन का परिणाम था कि मात्र घटना वैचित्र्य , चमत्कार, सामाजिक, वैषम्य, परम्परा के प्रति आस्था, कुरीतियों का निवारण आदि तक ही उनकी रचनाधर्मिता का रूप सीमित रहा । समग्रतः हमारी धारणा है कि बीसवीं शताब्दी की द्वितीय

दशकावधि - पर्यन्त हिन्दी के दोनो साहित्यांगो कहानी एवं उपन्यास को तत्कालीन लेखक निश्चित दिशा बोध नहीं दे पाये ।

प्रेमचन्द का प्रादुर्भाव :-

सन् 1916 में प्रेमचन्द की पहली कहानी "पंच-परमेश्वर" प्रकाशित हुई । इस कहानी में यथार्थोन्मुख आदर्श का ऐसा सुन्दर चित्रण था कि इसने उस समय लिखी जाने वाली सभी कहानियों का रंग फीका कर दिया । महिमा में इस कहानी की प्रतिद्वन्दिता पहले के लिखी गयी सिर्फ एक कहानी- "उसने कहा था" - कर सकती है । इन दोनो कहानियों का महत्व केवल सामाजिक न था । ये सार्वदेशिक और सार्वकालिक सत्य का सन्देश लेकर आयी थी[1]। "पंच परमेश्वर" के प्रकाशनोपरान्त लघु अन्तराल में ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण परक कहानी " आत्माराम" प्रकाशित हुई। प्रेमचन्द की इन दोनो ही कहानियों में प्रभावोत्पादकता एवं चरित्र चित्रण के जोड़ हैं । इससे पूर्व कहानियां इस धरातल पर नहीं उभर पायीं ।

कहानी की ही भाँति बीसवीं शती के द्वितीय दशक तक का काल उपन्यास की शैशवावस्था का रहा । वह अभी तक क्रीड़ा एवं मनरंजन में ही जीवन

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली : भाग - 3 / पृष्ठ 49।

जी रहा था । अनेकशः प्रयोग ही औपन्यासिक रचनाधर्म बन गये थे, एक रीति, एक नीति, एक दिशा का बोध नहीं हो पा रहा था। यद्यपि लेखक वर्ग एक व्यापक दृष्टिकोण से सामाजिक विविध परिदृश्य अवश्य संजोना चाहता किन्तु उस प्रभावोत्पादकता का नितान्त अभाव था जिसमें वह अपनी क्रिया शीलता को केन्द्रबिन्दु बना सके । अर्थ यह कि उपन्यास का स्वरूप ही न संवर सका और न उसके संसाधन की रेख मिल पा रही थी । प्रेमचन्द के अवतरण और प्रथम उपन्यास सेवा सदन §1918 ई0§ से हिन्दी के साहित्यांग उपन्यास लेखन को स्पष्ट दिशा प्राप्त हुई । इनके पूर्व उपन्यास कला का न कोई रूप निखर पाया था एवं न सामाजिक समस्याओं पर गम्भीर चिन्तन मनन की ही ओर किसी लेखक की दृष्टि गयी । निश्चय ही प्रेमचन्द का आगमन हिन्दी साहित्य के लिए ही नहीं अपितु भारतीय साहित्य के लिए वरदान सदृश सिद्ध हुआ । वे हमारे सांस्कृतिक गुरु थे । × × × जो कार्य राजनीति के क्षेत्र में गांधी जी जैसे, राजनीतिक नेता ने किया, वही कार्य साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द द्वारा सम्पन्न हुआ[1] ।

---

1. प्रेमचन्द और उनका गोदान : डा0 हरिमोहन भारती / पृष्ठ 19

xxxxx

xxx अध्याय - तीन xxx

:: प्रेमचन्द साहित्य में सामाजिक अन्तःसंघर्ष ::

समाज एवं उसके विविध परिवेश रचनाकार की रचनाधर्मिता के लिए शाश्वत उपजीव्य हैं। उसी में जीये तथा रमें रचनाकार की जीवन गति उसकी रचना में रीति का रूप धरती है, सामाजिक, बोध की चिरन्तन धारा ही उसके रचना- धर्म को रसात्मकता प्रदान करती है। यही रसात्मकता जब जीये गये क्षणों में श्रेयस और प्रेयस का शिव-बोध पात्रों में रूपायित होकर प्रतिभास देने की ललक बनता है तो युग सत्य प्रतिमूर्ति हो उठता है। वहीं रचना को कालजयी संज्ञा से अभिहित करता है। सत्यतः समाज की चिरन्तनता ही कालजयी- रचना है, उस रचना में सन्निहित शिव- बोध के यत्किंचित अंश को ग्रहण कर अपनी गति- मति की द्वन्द्वात्मक स्थिति जनित प्रतिस्थापन- प्रक्रिया में रचनाकार जिस सीमा तक स्वयं के आत्मसत्य में जीवन के जय- अभियान का गति विन्यास समारोपित कर सके, उस सीमा तक वह समाज की चिरन्तन - आभा आलोक - बिन्दु निर्मित करने का अधिकारी है। उसके अधिकार की वह सीमा,, वही है जो एक उपवन रक्षक की होती है। रक्षक उपवन सौन्दर्य आधार पुष्प- समुदाय के अस्तित्व सौष्ठव की निश्छलता को अक्षुण्ण रखता है, उसी प्रकार रचनाकार समाज के विभिन्न परिवेशों की गुणात्मक इयत्ता के आधारभूत मानव वर्ग

की जीवन्तता के लिए जीवन मूल्यों की उदात्तता को प्रतिष्ठित करता है ।जीवन के मूल्यगत - उदात्तभावों का संरक्षण लक्ष्य ही सामाजिक अंत-संघर्ष को जन्माता है, एवं जीवन मूल्यों का विश्लेषण रचनाकार उसे पोषण प्रदान करता है ।

अंन्तर्संघर्ष, अर्थात ऐसा ऊहापोह अथवा ऐसा आलोडन - विलोडन जिसमें मन की आभ्यन्तरिक स्थिति आन्दोलित होकर बाह्य जगत के किसी अश्रेयस से आक्रान्त, प्रेयस भावी प्रवृत्ति उद्वेलित होकर विवेक को जागृत करने के उपक्रम - क्रम में तर्क - वितर्क की द्वन्द्वात्मक वृत्ति का आश्रय ग्रहण करती है । वह वृत्ति चेतना में निष्क्रियता जनित- अवगुण्ठन को अनावृत कर अपने प्रेम आनन्द बोधक रम्य- नीहार से सम्बोधित कर बुद्धि - विवेक के सहकर्मभूत सद्धर्म - मर्म को व्याख्यायित करने की उत्कट-एषणा को जन्म देती है । यह उत्कंट - अभिलाषा, दूसरे शब्दों में सामासिक - अभीप्सा है । सामासिक - अभीप्सा जब अन्तर्शायिनि स्थिति का परि-त्याग कर वा ह्य जगत के कार्य-कलाप को देखने, परखने और वह उसमें प्रतिभासित शिव-अशिव रूपों का अभिज्ञान - ज्ञान करने तथा समष्टि श्रेय की आधेय - छवि को आराध्य बना बैठती है तो समग्र उत्तरदायित्व सामाजिक अन्तर्संघर्ष वहन करता है । यह सामाजिक - अन्तर्संघर्ष, समाज संगठन का एक सहभाग और चिरन्तन का सहभोग, उसी के साथ श्रेयस - प्रेयस का सहभोगी है, ठीक उस योगी के सदृश जो सांसारिक भावविलास का सहभागाश्रयी बन सहभोग ग्रहण करता हुआ, समग्रतः

सहभोगी बना अन्त में श्रेयस् परकल्याण की आवाप्ति - हेतु योग-मुक्ति की सहायता से योगी - संज्ञक बनता है । अन्तर्संघर्ष का अभिधेय भी वही योग- मुक्ति के सहाय्य का अन्वेषणानुगमन । यह अन्तर्संघर्ष हमारी चिरन्तन- चिन्तनधारा की अविचल गति है । संघर्ष समाज के लिए तथा समाज, संघर्ष के लिए परस्पर प्रतिभूति हैं । अन्तर्संघर्ष चेतन का प्रतिभूत है । यही उसकी जीवन्तता है, उसके अस्तित्व का बोध कराती है । यह अन्तर्संघर्ष की प्रवृत्ति ही वस्तुत: रचनाकार की रचनाधर्मिता को जन्माती हैं । प्रेमचन्द का रचनाकार व्यक्ति अन्तर्संघर्ष का पर्याय बोध है ।

हिन्दी के उपन्यास साहित्य में सामाजिक - अन्तर्संघर्ष का सूत्रपात उपन्यास लेखन के साथ ही हुआ । प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यास- लेखकों की सामाजिक चेतना, यद्यपि कुछ सीमातक अल्पप्रखर रही तथापि उन्होने सामाजिक विकृतियों, अनाचारों, प्रभुसत्तात्मक भावनाओं, प्रदूषित विचारधाराओं को अपनी रचना का विषय बनाकर, उनके निराकरण के लिए दिशा संकेत किया है। आस्था की श्रृंखला से आबद्ध उनकी मानसिकता ने परम्परागत पाप- पुण्य, नैतिकता - अनैतिकता, धर्म- अधर्म के रूप - स्वरूप की व्याख्या उपस्थित कर उनमें समागत प्रदूषण के प्रति विद्रोह करने का साहस नहीं किया किन्तु उनकी रचनाओं ने संघर्ष का अभियान प्रवर्तित किया । उस अभियान को गतिशीलता प्रदान करने का श्रेय प्रेमचन्द को है पूर्ववर्ती रचनाकारों का चेतन सामाजिक- समस्याओं का सूक्ष्म

अन्वीक्षण एवं परिवेशबोध सापेक्ष्य परिवीक्षण द्वारा सामुदायिक दृष्टि-कोण जब मानस में अवतरण न कर सका, वह मात्र एक [illegible] तक ही उप-स्थापित कर सका। बाह्यावरण की परत-विदार अन्तर्दृष्टि को उन्मीलित करने में सफलता न ग्रहण की। समस्याओं के परिवेश में मानवीय संवेदना का समायोजन करने से विरत रहा। प्रेमचन्द की दृष्टि उनकी व्यभिचारी उनकी अपेक्षा सूक्ष्म एवं व्यापक होकर प्रकटी। जीवन की बुराइयों, तथा दुष्ट अत्याचारी, व्यभिचारी और भ्रष्टाचारी पात्रों के प्रति हमारी तीव्र घृणा जाकर प्रेमचन्द ने समाज सुधार की अद्भुत प्रेरणा दी है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रेम, घृणा, करुणा, हास्य, वात्सल्य, साहस, उत्साह, आदि सभी प्रकार के उदात्त भाव रस की चरम स्थिति को पहुँचे हैं। उनकी सफलता का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि वे इन मानवीय संवेदनाओं का सफल चित्रण कर पाये हैं। जीवन की समस्याओं को उन्होंने भाव संवेदनाओं में डुबोकर ही प्रस्तुत किया है।[1] आस्था तथा विश्वास की नींव पर निर्मित पौरूष विहीन मानव समुदाय को समाज की संज्ञा से अभिहित करना प्रेमचन्द की दृष्टि से मानव मूल्यों का तिरस्करण, अव-मानन और परिहास- सदृश था। समाज का ऐसा परिवेश मानव की जय यात्रा को कथमपि सफलता नहीं दिला सकता है। उनकी कल्पना का समाज समग्रत: उदात्त और निश्छल था, वह वर्गगत- पार्थक्य अथवा

---

1. उपन्यासकार प्रेमचन्द और उनका गोदान: डॉ० कृष्ण देव झारी पृष्ठ 29-30

विभिन्न जातिगत भेद नीति - परम्परा का मूलोच्छेदन के आकांक्षी रहे । वह चाहते थे । जनमानस में सामूहिकरूप से सद्भाव एवं सुरूचि उत्पन्न हो जिससे विकास की भावात्मक - आस्था पौरुषेय होकर कर्म के प्रति विश्वास अंकुरित कर सके, तभी समाज का स्वरूप पुरुष - सापेक्ष बनकर मानवीय गुणवत्ता की भूमि बनेगा ।-" हम इतने अकर्मण्य हो गये हैं, इतने पुरुषार्थ हीन कि हमें अपने पुरुषार्थ से ज्यादा भरोसा आशीर्वाद पर है । इस प्रकार से हमारी विचार- शक्ति लुप्त हो गई है ।[1] इस प्रकार विचार शक्ति का लोप चेतन की इयत्ता का ह्रास है। इयत्ता का यह ह्रास अन्तर्संघर्ष मात्र बाह्याडम्बर रहकर चेतन की निश्छल- प्रवृत्ति को जागृत नहीं कर सकता ।

प्रेमचन्द अपनी चिन्तनधारा को यथार्थ की भावभूमि पर प्रतिष्ठित करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे । वह सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों रूपों का अनुपम समन्वय चाहते थे । उनका विश्वास मात्र कथनी नहीं अपितु उसमें करणी के सहज संयोग से अवतरित होती कर्मनिष्ठा में था, जिसकी संज्ञा उनके शब्दों में पुरुषार्थ है, जिसके वह स्वयं प्रतिरूप रहे । निरी-आस्था अथवा पारम्परिक विश्वास के प्रति अन्ध मानसिकता मनुष्य की पौरूष हीनता का ही प्रतीक हैं, यह उसकी जीवन्तता को पंगु बना देती है । प्रेमचन्द धार्मिक - आडम्बर , थोथी मानसिकता और

---

1. विविध प्रसंग भाग 3 / पृष्ठ 155-157

रूढ़िवादिता के विरुद्ध क्रान्तिचेता , चेतना का आवास करते रहे। यह एक वर्ग विशेष की स्वार्थ भावना मूलक प्रवृत्ति हैं । उन्होंने लिखा है - "संसार के लिए उनका यह कार्य अनोखा है और कृतघ्नता का एक ज्वलंत उदाहरण हैं । पर वे अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी देश को सत्यपथ पर जाने से रोक नहीं सकते क्योंकि उनमें कोई बल नहीं हैं ।शारीरिक, मानसिक, आत्मिक तथा नैतिक बल में भीषण अभाव ने ही उन्हे पतन के गहरे गर्त में गिरा दिया है । x x x मन्दिरों के यह विधातागण नये युग की आवाज नहीं सुन सकते । नये जमाने की जोरदार लहर के विरुद्ध खड़े होने में उन्हे सुख मिलता है पर यह निश्चित है कि यदि उन्होंने यही क्रम रखा x x x तो वह दिन दूर नहीं, जब कि नवीन युग की प्रचण्ड शक्ति उनके अस्तित्व को मिटा देगी । [1] प्रेमचन्द युग के समर्थक दूरदर्शी रचनाकार थे, समय की गति को पहचानने एवं उसके अनुसरण को हितकर समझते थे। प्रेमचन्द का विश्वास था कि समय की लहर बहुत बलवान होती है । बड़ी से बड़ी शक्ति द्वारा भी उसे रोका नहीं जा सकता । देश की दशा को भली भाँति देखते हुए धर्म के आडम्बरों, उनकी रूढ़ियों और राक्षसी नियमों से मुक्त करके ही वे अपना- अपने धर्म का अपने समाज तथा अपने देश का सबसे बड़ा हित कर सकेंगे और जनता के

---

1. विविध - प्रसंग भाग 3 / पृष्ठ 160

हृदय में ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकेंगे । इसलिए सबसे अच्छा है कि हम विकास और प्रगति की लहर को पहचाने और अपने को सुधार कर नवीन युग के अनुकूल बनायें । इसी में हमारा हित और कल्याण है ।[1] प्रेम-चन्द साहित्य के अनुशीलन कर्ता उसमें तत्कालीन सामाजिक परिदृश्यों का आकलन करते समय प्रमुखतः नारी- जीवन से सम्बन्धित - विधवा की वेश्या-ओं की विवाह रीतियों की दहेज की समस्याओं, औद्योगिकरण की कृषकों की साम्प्रदायिकता की वैसम्य मूलक अस्पृश्यता की समस्याओं को परिगणित कर उन्हें ही केन्द्रबिन्दु स्वीकार वैचारिक विश्लेषण प्रस्तुत करतें आयें हैं । भारतीय चिन्तनधारा में इस जागतिक मानवजीवन का परमलक्ष्य चार पुरूषार्थों की प्राप्ति निरूपित की गई है, वह है, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष/ समाज में मनुष्य को " परस्परं भावान्तः श्रेयः परमवास्यथ - (परास्प कल्याण - चिन्तन ही श्रेयस्कर है) रूप धर्म अर्थात कर्तव्य निर्वहन के साथ अर्थ को प्राप्ति हेतु प्रयत्न करना चाहिए । अर्थ ही वस्तुतः सामाजिक जीवन का मूलभूत तत्व है । आर्थिक समस्या ही समाज में विभिन्न समस्याओं को जन्म देती है।

प्रेमचन्द जीवन के अतिरिक्त लोक- परलोक, कहीं भी किसी वस्तु को सत्य स्वीकारना कथमपि उचित नहीं मानते । उनकी दृष्टि में जीवन से

---

1. प्रेमचन्द और उनका साहित्य : डॉ० (श्रीमती) शीला गुप्ता, पृष्ठ - 288

श्रेष्ठतम सत्य ईश्वर अथवा स्वर्ग भी नहीं है । इसका कारण कदाचित जीवन का सम्यक अनुभव, उसकी सतत सुष्ठुप्रियता एवं जीनेका मर्म है । जीवन का सत्य वह अपने पात्र मेहता से विवेचित कराते हैं -"आत्मवाद तथा अनात्मवाद की खूब छान-बीन करने पर वह इसी तत्व पर पहुँच जाते थे कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो के बीच में जो सेवामार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वही जीवन को ऊँचा और पवित्र बना सकता है । किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था । यद्यपि वह अपनी नास्तिकता को प्रकट न करते थे, इसलिए कि इस विषय में निश्चित रूप से कोई मत स्थिर करना वह अपने लिए असम्भव से, समझते थे, पर यह धारणा उनके मन में दृढ़ हो गयी थी कि प्राणियों के जन्म, मरण , सुख-दुख, पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है । xxx ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य उनकी समझ में आता था और वह था मानव जीवन की एकता। एकात्मवाद या सर्वात्मवाद या अहिंसा तत्व को वह अध्यात्मिक से नहीं, भौतिक दृष्टि से ही देखते थे, यद्यपि उन तत्वों का इतिहास के किसी काल में भी अधिपत्य न रहा, फिर भी मनुष्य जाति के सांस्कृतिक-विकास में उनका स्थान बड़ेxx महत्व का है ।[1] मानव जीवन की

---

1. उपन्यासकार प्रेमचन्द और उनका गोदान /पृष्ठ 143

(गोदान से उद्धृत)

विविध वृत्तियों को क्रीड़ा तथा उनके विकास- ह्रास, शुभ-अशुभ एवं अथ और इति की भूमि है समाज, इसलिए प्रेमचन्द जीवन सत्य के लिए इसकी प्रतिष्ठा विभूति उस समाज को सत्यनिष्ठ, निश्छल और पवित्र देखना चाहते हैं । समाज को दूषित करने वालाल तत्व है"अर्थ" अर्थात धन- सम्पत्ति । यह धन- मद अत्यन्त दुर्दम है, यही दुर्दमनीय धनमद समाज की समस्त विकृतियों का मूल है । धनमद में मस्त मनुष्य उस मदोन्मत्त हस्ती के सदृश है जो अपने स्वरूप को विकृत कर अनाचार का प्रतीक बन जाता है, अन्तत: स्वय भी विनाश का पात्र बनता है । मदोन्मत्त हाथी हाथी की प्रकृति जनित सौम्य वृत्ति का त्याग कर बैठता है, परिणामत: जिसे हम पुज्य गणेश सदृश आराध्य मान आदर देते रहे हैं उसे देखकर पलायन करने लगते हैं, तथैव धनमद मत्त मनुष्य मानवीय उदात्तता का त्याग करने का कारण घृणा का पात्र बन जाता है । प्रेमचन्द की दृष्टि में जो व्यक्ति धन सम्पदा में विभोर और मग्न हो, उसके महान पुरुष होने की कल्पना मैं नही कर सकता । जैसे ही मै किसी आदमी को धनी पाता हूँ वैसे ही मुझ पर उसकी कला और बुद्धिमत्ता की बातों का प्रभाव काफूर हो जाता है । मुझे जान पड़ता है कि इस शख्स ने मौजूदा सामाजिक व्यवस्था को, उस सामाजिक व्यवस्था को, जो अमीरों द्वारा गरीबों के दोहन पर अवलम्बित हैं - स्वीकार कर लिया है ।[1] स्पष्ट

---

1. उपन्यासकार प्रेमचन्द और उनका गोदान/पृष्ठ 128

§ गोदान से उद्धृत §

है। सामाजिक- विषमता, परस्पर का पार्थक्य, उच्चता- नीचता, सबलता-निर्बलता, सम्मान- असम्मान, ज्ञान- अज्ञान, छूत-अछूत, धर्माडम्बर अन्धविश्वास आदि को जन्माने वाला आर्थिक- असन्तुलन है। उस असन्तुलन को समाप्त करके ही समाज को पवित्र बनाया जा सकता है। प्रेमचन्द तो कदाचित धनवैभव पोषी व्यक्ति को साहित्यकार स्वीकारने के लिए भी तैयार नहीं थे। उनका मन्तव्य इस कथन से स्पष्ट है- " जिन्हे धन -वैभव प्यारा है, साहित्य मन्दिर में उनके लिए स्थान नही नही हैं। यहाँ तो उन उपासकों की जरूरत है। जिन्होने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान लिया हो, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मुहब्बत का जोश हो। × × × अगर हम सच्चे दिल से समाज की सेवा करेंगे तो मान, प्रतिष्ठा, और प्रतिद्धि सभी हमारे पाँव चूमेंगी। फिर मान प्रतिष्ठा की चिन्ता हमें क्यों सताए। और उसके न मिलने से हम निराश क्यों हों ?. सेवा में जो आध्यात्मिक आनंद है वही हमारा पुरस्कार है। हमें समाज पर अपना बड़प्पन जताने, उस पर रोब जमाने की हवस क्यों हो ? दूसरों से ज्यादा आराम में साथ रहने की इच्छा भी हमें क्यों सतावें हम अमीरों की श्रेणी में अपनी गिनती क्यों करावें ? हम तो समाज का झण्डा लेकर चलनेवाले सिपाही हैं।॥१॥

---

1. कलम का सिपाही / पृष्ठ 621

सामाजिक अन्तर्संघर्ष का विश्लेषण करते समय यह आवश्यक है कि हम समाज का समग्र देखें, परखें उसकी विभिन्न रीति- परम्पराओं के परि-प्रेक्ष्य में तत्कालीन सामाजिक - परिवेश के दायित्व परिवहन एवं समाज की समस्त इकाइयों- कृषक, उद्योगी, धर्माचार्य आदि के क्रिया - कलाप का सूक्ष्म परिवीक्षण करें कि ये सब अधिकार सापेक्ष कर्तव्य- निर्वहन किस सीमा तक कर रहें हैं । प्रेमचन्द के कथा साहित्य में सामाजिक-अन्त-संघर्ष का विवेचन हम क्रमशः पारिवारिक धार्मिक तथा आर्थिक समस्याओं पर दृष्टिक्षेपण द्वारा प्रस्तुत करना चाहेंगे । समाज में सुखमय जीवन - यापन करने के लिए अनिवार्य तत्व है । समृद्धि । यह समृद्धि जब तक समष्टिभावी न होगी, सुखमय जीवन की कल्पना असम्भव है । यही कारण है कि प्रेमचन्द का समग्र कथा साहित्य इसी बिन्दु पर केन्द्रित है । प्रेम-चन्द सामाजिक - विकृति का प्रमुख कारण आर्थिक व्यवस्था का दूषित होना स्वीकारते हैं । इसीलिए हम समाज की सभी समस्याओं की जन्म-दात्री आर्थिक असन्तुलन विषयक, कथाकार प्रेमचन्द की अवधारणाओं का आकलन करने के पश्चात् अन्य सामाजिक समस्याओं पर दृष्टि-क्षेपण समीचीन समझते हैं । असन्तुलित आर्थिक - व्यवस्था का सर्वाधिक प्रभाव कृषक - जीवन पर पड़ता आ रहा है ग्रामीण परिवेश का अंकन करने वाले सशक्त रचनाकार प्रेमचन्द जी ने इस विषय को अपने कथा साहित्य में प्रमुख स्थान दिया है । सेवासदन प्रेमाश्रय रंगभूमि एवं गोदान उपन्यासों में सविस्तार और यथातथ्य रूप से अंकित हुई है । उपलब्ध चित्रण रंचमात्र भी अस्वा-

भाविक और कृत्रिम नहीं परिलक्षित होता, कारण वह स्वयं ग्रामीण - परिवेश में पले -पोसे और अपनी शासकीय सेवावृत्ति के समय जिला उप- विद्यालय निरीक्षक रहकर वह प्राय: विद्यालयों के निरीक्षणार्थ गाँवों में जाया करते थे, परिणामत: उनके मानस पटल पर ग्रामीण जीवन का एक सजीवचित्र रूपायित हो चुका था, निश्छल ग्रामीण जीवन से वह पूर्णत: - प्रभावित रहे, वाह्याडम्बर छल- कपट से दूषित नागर- जीवन कभी उनको आकर्षित न कर सका । उनका सरल, निष्कपट हृदय कृषकों की आर्थिक - दुरवस्था से द्रवित हो उठता, इसी का परिणाम है कि उनका कथा साहि- त्य कृषक जीवन का यथार्थ चित्रण उपस्थित करने में अद्वितीय सफलता प्राप्त कर सका । ग्रामीणों, कृषकों का निश्छल जीवन- याथार्थ्य जिस सुष्ठु एवं सहज रूप में ﴾ उसका﴿ कथा साहित्य उपस्थित करता है, वह अन्यत्र असं- भव है " प्रेमाश्रम" तथा" गोदान﴿ उपन्यासों में कृषक जीवन की महागाथा निबद्ध है जिसे पढ़कर पाठक स्वयं उद्वेलित हो उठता है। गाँव का यथार्थ चित्रण तथा उसके गौरव कृषक का जीवन " प्रेमाश्रम में चित्रित है -

चारों तरफ तबाही छायी हुई थी । ऐसा विरला ही कोई घर था, जिस में धातु के वर्तन दिखाई देते हो । कितने घरों में लोहे के तवे तक न थे । मिट्टी के वर्तनों को छोड़कर झोपड़े में और कुछ दिखायी न देता था । न ओढ़ना, न बिछौना, यहाँ तक कि बहुत से घरों में खाटें तक न थी । और वे घर ही क्या थे, एक - एक दो- दो छोटी कोठरियां थीं । एक मनुष्यों के लिए, एक पशुओं के लिए । उसी एक कोठरी में खाना -

सोना , बैठना सब कुछ होता था। बस्तियाँ इतनी घनी थीं कि गाँव में खुली हुई जगह कहीं दिखाई ही न देती थी । किसी के द्वारा सहन नहीं, हवा और प्रकाश का शहरों की घनी बस्तीयों में भी इतना अभाव न होगा । जो किसान बहुत सम्पन्न समझे जाते थे, उनके बदन पर साबित कपड़े न थे, उन्हें भी एक जून चबेना पर ही काटना पड़ता था। वह भी ऋण के बोझ से दबे थे । अच्छे जानवरों के देखने को आँखे तरस जाती थी। जहाँ देखो छोटे- छोटे मरियल दुर्बल बैल दिखाई पड़ते और खेत में रेंगते और चरनियों पर औंघते थे । कितने ऐसे गाँव थे, जहाँ दूध तक न मयस्सर था। इस व्यापक दरिद्रता और दीनता को देखकर माया का हृदय तड़प जाता था ।﴾1﴿

यह चित्रण लखन पुर गाँव के जमींदार के दत्तकपुत्र मायाशंकर, योरो-पीय- प्रवासोन्मुख होकर जब अनुमति न प्राप्त कर सका तो इलाके में भ्रमणार्थ निकला । भ्रमण की अवधि में प्रतिदिन जो कुछ देखता, अपनी डायरी में लिख लेता । कृषकों की दशा का खूब अध्ययन किया। किसान उसके प्रजाप्रेम, विनम्र और शिष्टता पर मुग्ध हो गये । किसानों के ऊपर कितने अत्याचार किये जाते थे इसका एक नमूना राय बहादुर कमलानन्द के शब्दों में -

जमींदार के हाथों किसानों की बड़ी दुर्दशा होती है । मैं स्वयं इस विषय

---

1. प्रेमाश्रम ﴾ पृष्ठ 235

में निर्दोष नहीं हूँ । बेगार लेता हूँ डाँड़-बीज भी लेता हूँ, बेदखली या इजाफा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता, असामियों पर अपना रोब जमाने के लिए अधिकारियों की खुशामद भी करता हूँ, साम, दाम दण्ड, भेद सभी से काम लेता हूँ, पर इसका कारण क्या है ? वही पुरानी प्रथा, किसानों की मूर्खता और नैतिक अज्ञान । शिक्षा के यथेष्ट प्रचार होते ही जमींदारों के हाथ से यह सब मौके निकल जायेंगे ।- मनुष्य स्वार्थी जीव है और यह असम्भव है कि जब तक उसे धींगा-धींगी के मौके मिलते रहते है वह उनसे लाभ न उठाये । × × × किसानों को यह विडम्बनाएं इसलिए सहनी पड़ती है कि उसके लिए जीविका के और सभी द्वार बन्द हैं ।[1] × × × यहाँ तो यह हाल था उधर फसल खेतों में सूख रही थी । मियाँ फैजुल्लाह सूखे खेतों को देखकर खिन जाते थे । देखते- देखते चैत का महीना आ गया । मालगुजारी का तकाजा होने लगा । गाँव के बचे हुए लोग अब चेते । वे भूल से गये थे कि मालगुजारी भी देनी है । दरिद्रता में मनुष्य प्रायः भाग्य का आश्रित हो जाता है । फैजुल्लाह ने सख्ती करनी शुरू की । किसी को चौपाल के सामने धूप में खड़ा करते, किसी को मुश्के कसकर पिटवाते । दीन नारियों के साथ और भी पाशाविक व्यवहार किया जाता, किसी को चूड़िया - तोड़ी जाती किसी के जोड़े नोचे जाते । × × × फैजू जानता था कि पत्थर दबाने से तेल न निकलेगा, लेकिन इन अत्याचारों उसका

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 63-64

उद्देश्य गाँव वालों का मान मर्दन करना था । इन दुष्कृत्यों से उसकी पशुवृत्ति को असीम आनन्द मिलता था ।[1]

"माघ के दिनों में जब शरीर में चुभनेवाली शीतल वायु चलती है और पानी भी पड़ता है, होरी खेतों की रखवाली के लिए मड़ैया बनाकर वहाँ रात्रि व्यतीत करता है । शीत के निवारण के लिए उसके पास यथेष्ट वस्त्र भी नहीं हैं । जाड़ा चारों ओर से आक्रमण करता है । और होरी विवश होकर बेवाय फटे पैरों को पेट में डालकर और हाथों को जाँघों के बीच में दबाकर और कम्बल में मुँह को छिपाकर अपनी ही गर्म साँसों से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था। पाँच साल हुए यह मिर्जई बनवायी थी । धनिया ने एक प्रकार से जबरदस्ती बनवा दी थी, वही जब एकबार काबुली से कपड़े लिए थे, जिसके पीछे कितनी साँसत हुई, कितनी गालियाँ खानी पड़ी और कम्बल तो उसके जन्म से भी पहले का है । बचपन में अपने बाप के साथ इसी में सोता था । जवानी में गोबर को लेकर इसी कम्बल में उसके जाड़े कटे थे और बुढ़ापे में आज वही बूढ़ा कंबल उसका साथी है पर अब वह भोजन के चबानेवाले दाँत नहीं, दुखनेवाला दाँत है । जीवन में ऐसा तो कहीं दिन ही नहीं आया कि लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो ।[2]

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 15।
2. गोदान / पृष्ठ 122

कृषकों को जमींदार अनेकशः पीड़ित करता है, कभी मालगुजारी में वृद्धि करने के लिए सोचता, कभी लगान न देने पर उसे पीड़ित करने के नये- नये ढंग खोजता, यहाँ तक कि उन पर नालिश तक करता-

" जब तक इलाके का प्रबन्ध लाला प्रभाशंकर के हाथों में था, वह गौस खाँ के अत्याचार से रोकते रहते थे। अब ज्ञानशंकर मालिक और मुखतार थे। उनकी स्वार्थप्रियता ने खाँ साहब को अपनी अभिलाषाएं पूर्ण करने का अवसर प्रदान कर दिया था। वर्षान्त पर उन्होंने बड़ा निर्दयता से लगान वसूल किया। एक कौड़ी भी बाकी न छोड़ी। जिसने रुपये न दिये या न दे सका, उस पर नालिश की, कुर्की करायी। और एक का डेढ़ वसूल किया। शिकमी असामियों को समूल उखाड़ दिया। मौरूसी और दाखीलकार असामियों पर भी वृद्धि के उपाय सोचने लगे। वह जानते थे कि कर वृद्धि भूमि की उत्पादक शक्ति पर निर्भर है और इस शक्ति को घटाने - बढ़ाने के लिए केवल थोड़ी से वाकचतुरता की आवश्यकता होती है। सारे इलाके में हाहाकार मच गया। कर वृद्धि के पिशाच को शान्त करने के लिए लोग नाना प्रकार के अनुष्ठान करने लगे। प्रभात से सन्ध्या तक खाँ साहब का दरबार लगा रहता। वह स्वयं मसनद लगा कर विराजमान होते। मुंशी मौजीलाल पटवारी उनकी दाहिनी ओर बैठते और - सुक्खू चौधरी बायीं ओर। यह महानुभाव गाँव के मुखिया,

सबसे बड़े किसान और सामर्थी पुरूष थे । प्रसामियों पर उनका बहुत दबाव था, इस लिए नीतिकुशल खॉ साहब ने उन्हे अपना मंत्री बना लिया था यह त्रिमूर्ति समस्त इलाके की भाग्य विधायक थी ।१।

किसानों की उत्पीड़न गाथा अनन्त थी- हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता" की भॉति इसके शोषण के लिए जमींदार की पाशविक - वृत्ति विविध रूप धरकर प्रकट होती । कहीं बेगार नहीं उत्सवादि विशेष अवसरों पर भेंट आदि । जमींदार महन्त आशाराम गिरि के ठाकुरद्वारे में प्रति-दिन कोई न कोई उत्सव का अवसर उपस्थित ही रहता । भोले-भाले सरल हृदय में किसानों तथा उनके सदृश अन्य अबल जनों को बेकार देनी पड़ती, साथ ही ठाकुर जी के लिए भेंट - न्योछावर भी चढ़ानी होती थी । जब इच्छा हुई भूमि पर लगान वृद्धि भी -

> "दरिद्र किसान कायदा- कानून नही जानते इसलिए महन्त जी ने लगान उतना बढ़ा दिया है कि पूरी उपज भी लगान के बरा-बर नहीं होती । ये सब कष्ट सहकर भी और आधा पेट खा-कर भीं किसान खेती किये जा रहे हैं । × × × इस साल अना-यास ही जिन्सों का भाव गिर गया । इतना गिर गया कि जितना चालीस पहले था। जब भाव तेज था, किसान अपनी

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 4।

उपज बेंच- बाच कर लगान दे देता था। लेकिन जब दो और तीन की जिन्स एक में बिके तो किसान क्या करें? कहाँ से लगान दें, कहाँ से दस्तूरियाँ दे, कहाँ से कर्ज चुकाए। विकट समस्या आ खड़ी हुई और, यह दशा कुछ इसी इलाके की न थी। सारे प्रान्त, सारे देश, यहाँ तक कि सारे संसार में यही मन्दी थी।[1]

ग्रह-ग्रहीत पुनि बात वश तापर बीछी मार" बेचारा बेगार, महन्त जी के ठाकुरद्वारे में चढ़ावा चढ़ाने से प्रायः सन्तप्त था ही, महन्त आशाराम गिरि द्वारा लगान- वृद्धि ने उसे बातरोगी के सदृश कम्पायमान करने लगा था कि जिंसो का भाव गिर जाने से वह अब असहाय सा हो उठा। स्थित यह कि किसान उपज का एक - एक दाना बेचने के बाद भी किसी प्रकार लगान का चतुर्थांश मात्र ही दे पाता, दूसरी ओर उनसे पूरी की पूरी लगान अदा कराने के लिए जमींदार और उसके करिन्दों द्वारा बल - प्रयोग करने में किंचिदपि शिथिल नहीं। मन्दी की ऐसी विषम स्थिति में किसानों पर होने वाले अत्याचारों का कथन प्रेमचन्द अपनी कहानी "जेल" में मृदुला के मुख से कराते हुए लिखते हैं-

" देहातों में आजकल संगीनों की नोक पर लगान वसूल

---

1. रंगभूमि / पृष्ठ 287

> किया जा रहा है । किसानों के पास रुपये हैं नहीं, दें तो कहाँ से दें ? अनाज का भाव दिन- दिन गिरता जाता है । × × × खेत की उपज से बीजों तक के दाम नहीं आते । मेहनत और इस सिंचाई के ऊपर, गरीब किसान लगान कहाँ से दें । [1]

रचनाकार की रचनाधर्मिता तत्कालीन समाज, उसमें होने वाले विभिन्न - आर्वतन विवर्तनों तथा तज्जनित परिणतियों, विविध परिप्रेक्ष्यों में संगमित परिवेश - उद्‌गमित भाव -भूमि एवं उस पर प्रतिष्ठित लोकमंगल-संभूत अव-धारणाओं के रूप को अत्यन्त सहज रीति से प्रतिबिम्बित करती है ।"कर्म-भूमि" में कृषक जमींदार के अनीतिपूर्ण आचरण शोषण बाजार भाव में गिरा-वट, निर्धनता से ग्रस्त होकर त्राण-मार्ग को खोजी बनाने लगा था । संयो-गतः उसे "अमर तथा आत्मानन्द " नामक दो युगपुरुष मिल गये । अमर समझौतावादी प्रकृति का होने के कारण जमींदार से अनुनय-विनय करके किसानों के साथ सदाचरण करने की चेष्टा करता रहा । जमींदार की प्रवृत्ति कथमपि परिवर्तन नहीं । विवश होकर अमर लगान न देने के लिए किसानों का आवाहन करता है ।वह बन्दी बना लिया जाता है । किसान सर्वथा त्रस्त होने के परिणाम - स्वरूप संघर्ष मार्ग पर आरूढ़ हो जाता है । "अमर का बन्दी बनाया जाना, आन्दोलन का प्रवर्तन था। किसान अत्यधिक उत्साह से लगान न देने और इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए पूर्णतः कटिबद्ध

---

1. मानसरोवर भाग 7 - "जेल" पृष्ठ-10

हो गया । शासन प्रतिरोध में तत्पर-

" पुलिस ने उस पहाड़ी इलाके का घेरा डाल रखा था। सिपाही चौबीसों घण्टे घूमते रहते थे। पाँच आदमियों से ज्यादा एक जगह जमा न हो सकते थे। शाम को आठ बजे के बाद कोई घर से न निकल सकता था। पुलिस को इत्तला दिये बगैर घर में मेहमान को ठहराने की भी मनाही थी। फौजी कानून जारी कर दिया गया था। कितने ही घर जला दिए गए थे और उनके रहने वाले हूबड़ों की भाँति वृक्षों के नीचे बाल-बच्चों को लिए हुए पड़े थे।[1]

स्पष्ट है कि समाज का समस्त उसके कार्यकलाप, परिवेश, व्यक्ति, व्यक्ति - जीवन एवं उसके अनिवार्य तत्व इसी असन्तुलित अर्थ - व्यवस्था के चारों ओर केन्द्रित थी। इससे पृथक होकर जीवन मात्र अर्थहीन परिभाषा बन रहा था। उसका सर्वाधिक प्रभाव ग्रामीण जीवन - क्रम पर पड़ा। वह अपनी कृषि के सहारें जीवन- यापन करने की आवश्यकताएं पूर्ण न कर पाता, उसके मूल में अर्थकी सामाजिक -स्वामित्वाकांक्षा, वर्ग विशेष उस पर एकाधिपत्य स्थापित किए हुए थे। अतिरिक्त वर्गधन के लिए उपके आश्रित बना निरन्तर उत्पीड़ित रहता। ऐसे उत्पीड़ित वर्ग का प्रधान कृषक तो चतुर्दिक आपादाओं का कोप-भाजन बनता रहा है। वह प्राय: उपज से लगान दे देता और जीवन के दैनन्दिन कार्यों की पूर्णता के लिए महाजनों से ऋण लेता, जीवन ही उस ऋण से मुक्ति पाने में गँवाता। कृषक के महाजनी सभ्यता से उत्प ्न की व्यथा-कथा का चित्रण रचनाकार प्रेमचन्द गोदान में अत्यन्त ही उद्वेलित भाव से प्रस्तुत करते हैं। सालों की लगान- अदायगी के लिए किसान महाजन का द्वार खट-

खटाता, इसके अतिरिक्त अन्य साधन न था क्योंकि मात्र उपज पर्याप्त न थी । गोदान में महाजनी सभ्यता के महापुरूषों का अच्छा अंकन हैं। प्रेमाश्रम में किसान जमींदार के उत्पीड़न से त्रस्त है तो गोदान में उसी के साथ महाजन से भी । बेलारी गाँव में ऋण देनेवाले प्रमुख व्यक्ति है- दातादीन पण्डित दुलारी सहुआइन, मँगरू साह और झिंगुरी सिंह । यह झिंगुरी सिंह शहर निवासी किसी खन्ना साहब के एजेण्ट है जो गाँववालों को वहाँ से लाकर रूपये ऋण रूप में देते तथा वसूलते हैं । प्रेमचन्द गाँव के किसानों की आर्थिक दुर्दशा का प्रतीक " गोदान" में "होरी" को निरूपित करते हैं । वह बेचारा सभी छोटे-बड़े महाजनों के चंगुल में फंसा हुआ है -

> इस फसल में खलिहान में सब कुछ तौल देने पर भी अभी तक उसके ऊपर कोई तीन सौ कर्ज था, जिस पर कोई सौ रूपये सूद के बढ़ते जाते थे। मँगरू साह से आज पाँच साल हुए बैल के लिए साठ रूपये लिए थे, उसमें साठ दे चुका पर वह साठ रूपये ज्यों का त्यों बने हुए थे । दातादीन पण्डित से तीस रूपये लेकर आलू बोये थे, तो चोर खोद ले गये, और उस तीस के इन तीन वर्षों में 100 रूपये हो गये थे । दुलारी विधवा सहुआइन थी, जो गाँव में नोन-तेल, तमाखू की दुकान रखे हुए थी । बटवारे के समय उससे चालीस रूपये लेकर भाइयों को देना पड़ा

---

*: कर्मभूमि / पृष्ठ 335

> था । उसके भी लगभग सौ रुपये हो गये थे, क्योंकि आने रुपये का व्याज था ।[1]
>
> × × × ×
>
> फिर होरी की ही यह दशा नही है, प्रायः सभी किसानों का यही हाल था। अधिकांश की दशा तो इससे भी बदतर थी । शोभा और हीरा को उससे अलग हुए अभी कुल तीन साल हुए थे, मगर दोनो पर चार- चार सौ का बोझ लद गया था ।[2]

प्रेमचन्द का आर्थिक, परिप्रेक्ष्य संगमित सामाजिक- अन्त: संघर्ष उनके सेवासदन" "कर्मभूमि", प्रेमाश्रम, एवं गोदान" उपन्यासों में प्रमुखत: प्रतिविम्बित होता है । "सेवासदन" और " प्रेमाश्रम" में यह संघर्ष जमींदारी प्रथा की क्रूरता से उत्पीड़ित किसानों की दयनीय दशा के माध्यम से " गोदान" में महाजनी सभ्यता की दूषित नीति के माध्यम से यह परिलक्षित है। ग्रामीण जीवन की आर्थिक दुरवस्था का पूर्ण उत्तरदायी जमींदार तथा महाजनी सभ्यता को निरूपित करते हुए प्रेमचन्द उसके परिवर्तन की सम्भावनाओं की कल्पना करते हैं । वह सामाजिक - व्यवस्था की इस विषमता के लिए अभिशाप स्वरूप विद्या - बुद्धि- बल समृद्ध जमींदार वर्ग की छल-कपटपूर्ण स्वार्थान्धता से समाज को मुक्त कराने के लिए संघर्ष भावना की आवश्यकता पर बल देते हैं ।प्रेमचन्द की इस परिकल्पना को मूर्तरूप प्रदान करने वाले " प्रेमाश्रम" के दो पात्र -

---

1. गोदान / पृष्ठ= 39
2. वही / पृष्ठ = 40

"प्रेमशंकर" और "मायाशंकर" सर्वतोभावेन त्याग एवं नैतिक- भावना से प्रेरित है । " मायाशंकर" अपनी सम्पत्ति के अधिकार को त्याग सभी असामियों को मुक्त कर देता है -

" यह मेरी नैतिक दुर्बलता और भीरूता होगी अगर मै अपने सिद्धांत का भोग लिप्सा कर बलिदान कर दूं । अपनी ही दृष्टि में पतित होकर कौन जीना पसन्द करेगा ? मै आप सब सज्जनों के सम्मुख उन अधिकारों और स्वत्वों का त्याग करता हूँ जो प्रथा, नियम और समाज व्यवस्था ने मुझे दिये हैं । मै अपनी प्रजा को अपने अधिकारों के बन्धन से मुक्त करता हूँ । वह न मेरे असामी हैं, न मैं उनका ताल्लुकेदार हूँ । वह सब सज्जन मेरे मित्र हैं । मेरे भाई हैं, आज से वह अपनी जोत के स्वयं जमींदार हैं । अब उन्हें मेरे करिंदों के अन्याय और मेरी स्वार्थ-भक्ति की यंत्रणाओं को न सहन करनी पड़ेगी । वह इजाफे, रखराज, बेगार की बिडम्बनाओं से निवृत्त हो गये । यह न समझिए कि मैंने किसी आवेग के वशीभूत होकर यह निश्चय किया है । नहीं, मैंने उसी समय यह संकल्प किया जब अपने इलाकों का दौरा पूरा कर चुका । आपको मुक्त करके मैं स्वयं मुक्त हो गया । x x x इस दलाली की बदौलत मुझे अपनी आत्मा पर कितने अन्याय करने पड़ते, इसका मुझे कुछ थोड़ा अनुभव हो चुका हैं । मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि उसने मुझे इस आत्मपतन से बचा लिया । मेरा अपने समस्त भाइयों से निवेदन है कि वह एक महीने के अन्दर मेरे मुख्तार के पास जाकर अपने- अपने हिस्से

का सरकारी लगान पूछलें और वह रकम खजाने में जमा कर दें ।× × मैं यह बता देना चाहता हूँ कि आप अपनी जमीन असमियों को नफे पर न उठा सकेंगे । यदि आप ऐसा करेंगे तो मेरे साथ घोर अन्याय होगा क्योंकि जिन बुराइयों को मिटाना चाहता हूँ आप उन्हीं का प्रचार करेंगे ।[1]

प्रेमचन्द ने कृषकों के शोषण की मूलभूत आर्थिक विषमता और जमींदारी प्रथा के विरोध में न कोई क्रान्ति - भावना की उत्प्रेरणा दी न हिंसात्मक - प्रक्रिया का संकेत किया अपितु एक सुधारवादी एवं भारतीय संस्कृति की मूल भावना त्याग, सहयोग के प्रचार को कल्पित किया । उसका एक दृष्टांत" "मायाशंकर" की अपने वंशानुगत अधिकारों का त्याग करना है । सुधार-वादी उनकी कल्पना को मूर्तरूप हम उनके उपन्या "सेवासदन " तथा"प्रेमाश्रम में उपलब्ध हैं । सेवासदन का पात्र कुवर अनिरूद्ध सिंह, कृषि सहायक सभा" की स्थापना करता है । विट्ठलदास " कृषक सहायता कोष स्थापित करता है ।

"कुँवर अनिरूद्ध सिंह एक कृषि सहायक सभा" खोलने वाले हैं । सभा का उद्देश्य होगा किसानों को जमींदारों के अत्याचार से बचाना ।[2]

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 242
2. सेवासदन / पृष्ठ 227

जमींदारों के अत्याचारों से पीड़ित कृषकों की शोचनीय दशा यद्यपि समाज के प्राय: सभी चिन्तनशील जनों के लिए कुछ सोचने का संकेत करती, मानवता के भाव जागृत करने- हेतु प्रेरित करती, उसमें सुधारार्थ प्रयत्नशील होने की अवधारणा का जन्म होता लेकिन पल्लवित - पुष्पित होने के लिए अवसर जुटाना साधारणत: कठिन प्रतीत होता, परन्तु कुँवर अनिरुद्ध सिंह के साहस से विट्ठलदास की भी अन्तरात्मा उद्वेलित हुई और वह भी उन्मुख हुआ-

> "आजकल वह (विट्ठलदास) कृषकों की सहायता के लिए एक कोष स्थापित करने का उद्योग कर रहे हैं जिससे किसानों को बीज और रूपये नाम मात्र सूद पर उधार दिये जा सके । इस सत्कार्य में सदन बाबू विट्ठलदास का दाहिना हाथ बना हुआ है ।[1]

"प्रेमाश्रम" में कथाकार प्रेमचन्द्र कृषकों की अधिकाधिक समस्याओं का सूक्ष्म आकलन, उन पर होने वाले अत्याचारों तथा उन सबके निवारण उपायों का संकेत करने की दृष्टि से अत्यन्त सजग प्रतीत होते हैं । न केवल कृषक वरन् जमींदारों की भी विभिन्न समस्याओं को अत्यन्त गंभीरता से देखने एवं परखने का प्रयास प्रेमचन्द ने किया है । उनकी धारणा के अनुसार कृषकों की सभी समस्याओं का निदान चली आ रही जमींदारी प्रथा की समाप्ति हो सकती है जमीदार- वर्ग की भी सुख शान्ति के लिए एक मात्र यही उपाय है । उपन्यास में इस सन्दर्भ में सम्बद्ध तीन निवारणोपाय स्पष्ट रूप से परि-

---

1. सेवासदन / पृष्ठ- 237

लक्षित होते हैं - एक कुछ कृषकों के मानस में उनके ऊपर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह- भावना का जन्म , दो, सुधार- भावना से उत्प्रेरित प्रेम- शंकर द्वारा जमींदारों के क्रिया-कलापों की आलोचना एवं तीन स्वयं राम कमलानन्द जैसे जमीदार स्वयं अपने वर्ग को आलोच्य स्वीकारने लगते हैं -

"मनोहर की दशा इसके प्रतिकूल थी । जिस दिन से वह ज्ञानशंकर की कठोर बातें सुनकर लौटा था, उसी दिन से विकृत भावनाएं उसके हृदय और मस्तिष्क में गूँजती रही थी । एक दीन ममोहत पक्षी था, जो घावों से तड़प रहा था। वह अपशब्द उसे एक क्षण भी न भूलते थे । वह ईट का जवाब पत्थर से देना चाहता था। वह जानता था कि सबलों से बैर बढ़ाने में मेरा ही सर्वनाश होगा , किन्तु इस समय उसकी अवस्था उस मनुष्य की सी हो रही थी, जिसके झोपड़े में आग लगी हो और वह उसके बुझाने में असमर्थ हों कर शेष भागों में भी आग लगा दें, किसी प्रकार इस विपत्ति का अन्त हो । रोगी अपने रोग को असाध्य समझता है, तो पथ्या- पाथ्य की बेड़ियां तोड़कर मृत्यु की ओर दौड़ता है । मनोहर - चौपाल के सामने से निकलता तो अकड़कर चलने लगता । (1)

मनोहर का लड़का बलराज तो जमींदार के करिन्दों की कारगुजारियों से इस सीमा तक आक्रोशाभिभूत हैं कि वह तत्काल उनका प्रतिरोध करने के लिए

---

1. प्रेमाश्रम : / पृष्ठ 41-42

योजना बनाना चाहता है ।--

"गौसखाँ :- सुनते हो मनोहर अपने बेटे की बात? भला सोचो तो डिप्टी साहब के कानों में यह बात पड़ जाय तो तुम्हारा क्या हाल हो? कहीं एक पत्ती का साया भी न मिलेगा ।

मनोहर ने दीनता से खाँ साहब की ओर देखकर कहा, खाँ साहब! मै तो इसे सब तरह से समझा-बुझाकर हार गया । न जाने क्या हाल करने पर तुला है । (बलराज से) अरे, तू यहाँ से जायेगा कि नहीं ।

बलराज :- क्यों जाऊँ ? मुझे किसी का डर नही है । यह लोग डिप्टी साहब से मेरी शिकायत करने की धमकी देते हैं, मै,आप इन लोगों को कभी नादिरशाही हुक्म न दिया होगा कि जाकर गाँव में आग लगा दो । और मान लो कि वह ऐसा कड़ा हुक्म दे भी दें तो इन लोगों को तो सोचना चाहिए कि गरीब किसान भी हमारे भाई बंद हैं । इन्हें व्यर्थ न सतावें । लेकिन इन लोगों को तो पैसे के लोभ और चपरास के मद ने ऐसा अन्धा बना दिया है कि कुछ सूझता ही नहीं। आज इस बेचारी बुढ़िया का क्या हाल होगा, मरेगी कि जियेगी। नौकरी को तो की है पाँच रूपयें की , काम है बस्ते ढोना, मेज साफ करना, साहब के पीछे-पीछे खिदमतगारों की तरह चलना और बनते हैं रईस ।

"अपने पसीने की रोटी खाऊँगा और अकड़कर चलूँगा । अगर कोई आँख दिखायेगा तो उसकी आँख निकाल लूँगा । वह बुड्ढा गौसखाँ कैसी लाल-पीली आँख कर रहा था। मालूम होता है इनकी मृत्यु मेरे ही हाथों लिखी हुई है मुझपर दो चोट कर चुके हैं । अब देखता हूँ कौन हाथ निकालते हैं । × × × मुझे कल प्रातः काल डिप्टी साहब के पास जाकर उनसे सब हाल कह देना चाहिए । विद्वान पुरुष हैं । दीन जनों पर उन्हे अवश्य दया आयेगी । अगर वह गाड़ियों के पकड़ने की मनाही कर दें तो क्या पूछना ? उन्हे यह अत्याचार कभी न पसन्द आता होगा । लेकिन कहीं उन्होने मुझे अपने इजलास से खड़े- खड़े निकलवा दिया तो ? बड़े आदमियों को घमंड बहुत होता है । कोई हरज नहीं मैं खड़ा हो जाऊँगा और देखूँगा कि कैसे कोई मुसाफिरों की गाड़ी पकड़ता है । या तो दो - चार के सिर तोड़कर रख दूँगा या आप भी वहीं मर जाऊँगा ।[1]

"प्रेमाश्रम का आदर्शवादी पात्र प्रेमशंकर वस्तुतः प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुखी आर्थिक व्यवस्था का साकार स्वरूप है । वह कृषक और सरकार के मध्य परम्परित दलाली का प्रबल विरोधी है । वह कृषकों के कृषि सम्बन्धी ढंगों में सुधार करके उनकी अभ्युन्नति का मार्ग प्रशस्त करना चाहता है, एतदर्थ वह एक नये समाज का निर्माण करके उसमें श्रमिकों तथा श्रम का आदर करने वालों की भागीदारी के लिए द्वार उन्मुक्त रखता है । वह एक कृषिशाला -

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 47-48

की स्थापना करता है -

" प्रेमशंकर की कृषिशाला नगर के रमणीय स्थानों की गणना में थीं । यहाँ ऐसी सफाई और सजावट थी कि प्राय: रसिकगण सैर करने आया करते थे । यद्यपि प्रेमशंकर उसके प्रबन्धकर्ता थे पर वस्तुत: असमियों की भक्ति और पूर्ण विश्वास ने उन्हे उसका स्वामी बना दिया था । अब अपनी इच्छानुसार नयी नयी फसलें पैदा करते नाना प्रकार की परीक्षाएं करते, पर कोई जरा भी न बोलता । और बोलता ही क्यों, जब उनकी कोई परीक्षा असफल ही न होती थी । जिन खेतों में मुश्किल से पाँच-सात मन उपज होती थी वहाँ अब पन्द्रह- बीस मन का औसत बड़ता था । उस पर बाग की - आमदनी अलग थी । इन्ही चार सालों में कलमी आम, बेर, नारंगी, आदि के पेड़ों में फल लगने शुरू हो गये थे । प्रेमशंकर में व्यावसायिक संकीर्णता छू तक नहीं गयी थी । जो सज्जन वहाँ आ जाते उन्हें " फूल-फलों की डाली अवश्य भेंट की जाती थी । × × × × हाजीपुर वाले तो उन्हे देवता समझते थे और अपने भाग्य को सराहते थे कि ऐसे पुण्यात्मा ने हमें उबारने के लिए यहाँ निवास किया । उनके सदय, उदार, सरल स्वभाव ने मस्ता कोरी के अतिरिक्त गाँव के कई कुचरित्र मनुष्यों का उद्धार कर दिया था। भोला अहीर जिसके मारे खलिहान में अनाज न बचता था दमड़ी

पासी जिसका पेशा ही लठैती था, अब गाँव में सबसे मेहनती और ईमानदार किसान थे ।[1]

प्रेमशंकर किसानों के परिश्रम का प्रशंसक था, उसकी दृष्टि में भूमि उसकी है जो उसको जोते ।[2] वह किसानों की सुख- सुविधा के लिए सतत प्रयत्नशील रहता । प्राय: कृषकों की दुरवस्था से प्रेमशंकर का हृदय द्रवित हो उठता। उसकी सोच में -

"परिश्रमी तो इनसे अधिक कोई संसार में न होगा । मितव्ययिता आत्मसंयम में, गृह प्रबन्ध में वे निपुण हैं । उनकी परिद्रता का दायित्व उन पर नहीं है बल्कि उन परिस्थितियों पर है जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है और यह परिस्थितियाँ क्या हैं? आपस का फूट, स्वार्थपरता और एक ऐसी संस्था का किसान जो उनके पाँव की बेड़ी बनी हुई है । × × × आपस में विरोध क्यों हैं ? दुरवस्थाओं के कारण जिनकी इस वर्तमान शासन सृष्टि की है । परस्पर प्रेम और विश्वास क्यों नहीं है ? इसलिए कि यह शासन इन सद्भावों को अपने लिए घातक समझता है और उन्हें पनपने नहीं देता ।[3]

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 127-128
2. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 983
3. वही / 128

भीषण बाढ़ के कारण गाँव अप्रत्याशित रूप से प्रभावित हुआ । घर-परिवार जलप्लावन के ग्रास बन गये । जहाँ सुखद हरियाली छिटकती रही, वह मरुभूमि - सदृश दिखायी पड़ने लगा । अधिकतर गाँव के निवासी दूसरे गावों में भाग गये थे । कुछ जो बचे रहे वे सिरकियां बनाकर निवस रहे थे ।, न किसी के पास भोजन न वस्त्र । अत्यन्त ही दु:खद परिदृश्य उपस्थित था । प्रेमशंकर सोचने लगा -

"कितनी विषम समस्या है, इन दीनों का कोई सहायक नहीं ।आए दिन इन पर विपत्ति पड़ा करती है । ये बेचारे इसका निवारण नहीं कर सकते । साल - दो साल में जो कुछ तन-पेट काटकर संचय करते है। वह जलदेव की भेंट कर देते हैं । कितना धन, कितने जीव इस भँवर में समा जाते हैं, कितने घर मिट जाते हैं, कितनी गृह-स्थियों का सर्वनाश हो जाता है और यह केवल इसलिए कि इनको गाँव के किनारे एक सुदृढ़ बाँध बनाने का साहस नहीं है । न इतना धन है, न वह सहमति और सुसंगठन है जो धन का अभाव होने पर भी बड़े- बड़े कार्य सिद्ध हो जाते हैं । ऐसा बाँध यदि बन जाय तो इसी गाँव को नहीं, आस-पास के कई गाँवों की रक्षा हो सकती है । मेरे पास इस समय चार-पाँच हजार रुपये हैं क्यों न इस बाँध में हाथ लगा दूँ ? गाँव के लोग धन न दे सके तो मेहनत कर सकते हैं । केवल उन्हें संगठित करना होगा ।[1]

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 87

प्रेमचन्द का कथा साहित्य ग्रामीण परिवेश का चित्रण करने वाला, किसानों की विविध समस्याओं जो प्राय: जमींदारी- प्रथा के अत्याचारों से संबंधित है । उपन्यास " गोदान" प्रमुखत: कृषकों की आर्थिक समस्याओं को ही अंकित करता है । यद्यपि अन्याय समस्याएं भी अनुसंगिक रूप से उभरी है किन्तु उनका चित्रण प्रकारान्तर से आर्थिक अव्यवस्था का अनुपूरक मात्र ही स्वीकारना पड़ेगा । अन्य उपन्यासों की अपेक्षा इस में कथा- संघटन - परिप्रेक्ष्य में वातावरण - अंकन की --

"यह विशेषता परिलक्षित होती है कि उन्होंने ऐसे जीवन्त पात्रों के माध्यम से समस्या के विविध आयामों को चित्रित किया है कि समस्या अपने यथार्थरूप में पाठक के मन को प्रभावित करती है । × × × इसी जीवन्त परिवेश के कारण ही प्रेमचन्द के उपन्यास अत्यन्त प्रभावोत्पादक बन गये हैं । प्रेमचन्द ने परिवेश को जिस सजीव रूप में प्रस्तुत किया है उससे उनके आर्थिक समस्या - विषयक सूक्ष्म व्यापक एवं गहरे ज्ञान का परिचय मिलता है । यह ज्ञान उन्हे अनुभव से प्राप्त हुआ । × × × किसानों तथा श्रमजीवियों की समस्याओं को उन्होंने बिल्कुल नजदीक से देखा था। इसीलिए उन्होंने आर्थिक समस्या के जिन विविध पहलुओं का उद्घाटन किया है, उनमें निरी बौद्धिकता नहीं है, न उनका दृष्टिकोण ही कोरा वैज्ञानिक है । समस्या के प्रति देखने से प्रेमचन्द के दृष्टिकोण में भावुकता है, सहानुभूति है, आत्मीयता है, और इन दु:खों से भारत के श्रमजीवी तथा सर्वहारावर्ग को मुक्त करने की सच्ची तन्मयता

भी है । × × × आर्थिक समस्या के प्रति देखने का प्रेमचन्द जैसा दृष्टिकोण उनके युग के हिन्दी उपन्यासकारों में अपवाद से ही पाया जाता है ।[1]

यह विवेचन संकेत करता है कि "कर्मभूमि", सेवासदन, प्रेमाश्रम, "उपन्यासों में कृषक – उत्पीड़न का उत्तरदायित्व जमींदार वर्ग पर और " गोदान" में यह उत्पीड़न सेठ- साहूकारों द्वारा ऋण पर अधाधुंध व्याज वसूल करना " की कठोर प्रवृत्ति पर निरूपित किया गया है । प्रकारान्तर से पूँजीवादी – प्रवृत्ति ही आर्थिक असन्तुलन का मूल है । पूँजीवाद ही सामन्तशाही को जन्माता है, यही सामन्तीवृत्ति उत्पीड़न की उत्प्रेरिका बनती रही । पूँजीवादी मनुष्य स्वकेन्द्रित – वृत्ति का दास होता है, उसे अपने सुख- भोग-विलास के लिए अधमाधम कृत्य करने में शील, संकोच, लज्जा आदि का स्वप्न में भी अनुभवन नहीं होता । अन्यों का शोषण , उत्पीड़न तो जैसे उसके लिए ईश्वरप्रदत्त वरदान है। सामाजिक – अर्थ–व्यवस्था के आधार रहे हैं – कृषि एवं उद्योग । कृषि संवलित आर्थिक असन्तुलन का विवेचन हम कर चुके हैं, अब उद्योग – आश्रयी आर्थिक व्यवस्था के शिवअशिव पक्षों का विश्लेषण प्रस्तुत करना चाहेंगे ।—

---

1. प्रेमचन्द्र : एक सिंहावलोकन : संपादक : प्रो० ह० श्री साने पृष्ठ – 49

समाज और राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि के दो ही स्रोत होते हैं - एक कृषि एवं दूसरा उद्योग । उद्योग में पूँजी का निवेश होता है, निवेशकर्ता पूँजीपति ही उद्योग का स्वामी बनता है । यह उद्योग राष्ट्रीय समृद्धि की पहचान भी है । परन्तु यह उद्योग ग्रामीणों तथा उनकी कृषि के लिए तत्कालीन युग में जब प्रेमचन्द का रचनाकार- व्यक्ति अवतरित हुआ अभिशाप बनता जा रहा था। सामाजिक परिवेश और विविध कार्य कलापों का सजग पारखी एवं सूक्ष्म अध्येता के रूप में रचना धर्मिता में समग्र को उन्होने समेटने का सफल प्रयास किया है । जिसका आभास हमें उनके दूसरे उपन्यास प्रेमाश्रम से ही होने लगता है । राम कमलानन्द जी के यहाँ कोई एजेण्ट किसी कंपनी का हिस्सा खरीदने हेतु निवेदन करने आया था, उसका निवेदन स्वीकारने में वह अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं । एजेण्ट अपनी समझ के अनुसार संभावित शंकाओं का निवारण करते हुए कहता है -

एजेण्ट- तो क्या आप समझते हैं कि कम्पनी का संचालन उत्तम रीति से न हो? राम साहब - कदापि नहीं ।

एजेंट - तो फिर आपको उसका हिस्सेदार बनने में क्या आपत्ति है ? मैं आपकी सेवा में कम से कम पाँच सौ हिस्सों की आशा लेकर आया था। जब आप जैसे विचारशील सज्जन व्यापारिक उद्योग से पृथक रहेंगे तो इस अभागे देश की उन्नति सदैव एक मनोहर स्वप्न ही रहेगी ।

राम साहब :- मै ऐसी व्यापारिक संस्थाओं को देशोद्धार की कुंजी नही

समझता ।

एजेण्ट- क्यों (आश्चर्य से) ?

रामसाहब- इसलिए कि सेठ जगराम और मिस्टर मनचूर जी का विभव देश का विभव नहीं है । आपकी यह कम्पनी धनवानों को और भी धनवान बनायेगी । पर जनता को इससे लाभ पहुँचने की सम्भावना नही है । आप निस्सन्देह कई हजार कुलियों को काम में लगा देंगे पर यह मजूरे अधिकांश किसान ही होंगे और मै किसानों को कुली बनाने का कट्टर विरोधी हूँ । मै नहीं चाहता कि वे लोभ के वश अपने बालबच्चों को छोड़कर कम्पनी की छावनियों में जाकर रहें और अपना आचरण भ्रष्ट करें । अपने गाँव में उनको एक विशेष स्थिति होती हैं । उनमें आत्म प्रतिष्ठा का भाव जागृत रहता है । बिरादरी का भय उन्हे कुमार्ग से बचाता है कम्पनी की शरण में जाकर वह अपने घर के स्वामी नहीं, दूसरे के गुलाम हो जाते हैं, और बिरादरी के बन्धनों से मुक्त होकर नाना प्रकार की बुराइयों करने लगते हैं । (1)

उद्योग- संस्कृति किस प्रकार धनवानों के लिए वरदान और श्रमिक निर्धनों के लिए अभिशाप है जहाँ उसका न केवल आर्थिक शारीरिक और मानसिक शोषण ही किया जाता अपितु उनको आत्मिक दृष्टि से पंगु बनाकर नैतिक

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ- 63

पतन की ओर अभिमुख कर दिया जाता है। इन उद्योगों के विकास से समाज तथा देश की अभ्युन्नति कम किन्तु उसके स्वामियों की ही श्रीसम्पन्नता वृद्धि होती है । यह प्रकारान्तर से आर्थिक शोषण की ही प्रक्रिया के साधन है । प्रेमचन्द की रचनाकार दृष्टि ने तत्कालीन आर्थिक- व्यवस्था का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। व्यवस्था की विषयकारी समस्याओं एवं वर्ग विशेष को शोषित दलित बनाने वाले कारणों तथा वर्ग- संघर्ष को जन्मानेवाले साधनों को उन्होने भलीभाँति परखा भी था । यही कारण है कि उन्होने औद्योगीकरण, उसके सामाजिक - आर्थिक - परिप्रेक्ष्यों, औद्योगिक जीवन विषयक समस्याएं, उनसे उत्पन्न होने वाली विषम परिस्थितियों का अपने उपन्यासों में सफलता पूर्वक अंकन किया है ।

प्रेमचन्द की लोकाश्रयी, संस्कृति का सामाजिक और आर्थिक विश्लेषण हमें उनके उपन्यास " रंगभूमि" में प्राप्त होता है । यहाँ पूँजीवादी- संस्कृति से होने वाली सामाजिक एवं आर्थिक क्षति को पूर्ण सजगता से प्रेमचन्द का रचनाकार - मानस ग्रहण कर उसे अभिव्यक्ति देने में सफल हुआ है । पूर्ववर्ती "प्रेमाश्रयी" आदि उपन्यासों में सामन्तवादी - संस्कृति द्वारा सामाजिक स्थिति के ह्रास, कृषकों को शोचनीय स्थिति में पहुँचने का चित्रण किया है जो सर्वथा यथार्थ की भूमि पर अवस्थित है । इस उपन्यास में पूँजीवाद द्वारा अस्तित्व संरक्षण को ही भय उत्पन्न हो जाने का संकेत प्रेमचन्द ने किया है । पूँजीवादी - संस्कृति गाँव के सरल और निष्कपट सुखबोधी जीवन को ही कलुषमय बनानेवाली है । यह उपन्यास सही अर्थों में अत्यन्त

विशद और व्यापक दृष्टि से सामाजिक समग्र को व्याख्यायित करता है--

" इसमें भारतीय समाज की राजनीतिक, आर्थिक - देश का प्रौद्योगीकरण और उसका ग्रामीण प्रणाली से विरोध, सामाजिक नागरिक और ग्रामीण समाज व्यवस्था पर तत्कालीन परिस्थितियों के आलोक में दृष्टिगत किया है । तत्कालीन- आन्दोलनों की ध्वनि में पात्रों का जीवन, अपनी व्यक्तिगत महानताओं और दुर्बलताओं के साथ चित्रित किया गया है । वस्तुतः यह उपन्यास जीवन के आंदोलनों के पक्ष की विशद व्याख्या है । आन्दोलन बहिर्जगत के अतिरिक्त अन्तर्जगत का भी संस्पर्श करते है । x x x "रंगभूमि" में शासन व्यवस्था की इस भ्रांतिमूलक नीति का विशद् चित्रण हुआ है । उपन्यास की कथा - वस्तु मूलतः दो सभ्यताओं के संघर्ष पर टिकी है । प्रेमचन्द ने स्पष्ट कर दिया है कि नैतिक पतन और शोषण की पूरी जिम्मेदारी आधुनिक पूँजीवादी औद्योगीकरण पर है । ग्राम- जीवन की सद्वृत्तियों के पराभव से क्षुब्ध प्रेमचन्द की दृष्टि औद्योगीकरण के दूषण पर टिकी है । प्रेमचन्द औद्योगिक विकास में प्राचीन मान्यताओं को ही स्वीकार करते हैं ।[1]

"रंगभूमि" का रचनाकार इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पूँजीवादी संस्कृति

---

1. प्रेमचन्द और उनका साहित्य : डॉ० श्रीमती शीला गुप्त
पृष्ठ 100-101

एवं उसके उद्योग - स्थापन द्वारा पकि कर्मपोषिता आत्मनिर्भरा- संस्कृति का ह्रास होता जा रहा है। गाँव की भूमि नगर सभ्यता के पक्षधर धन-वानों के उद्योग प्रतिष्ठानों के स्थल बनते जा रहे हैं । परिणामतः - ग्रामीण जनों का सामूहिक जीवन अस्त-व्यस्त बिखरने लगा है । धनिक वर्ग उद्योग प्रतिष्ठान स्थापित कर गाँववालों की सहायता से उन्हें पारिश्रमिक दे, मजदूर बनाकर भरपूर लाभ उठाता है । धन वाले के पास बुद्धि विवेक, तर्क शक्ति है जिसकी सहायता से वह सहज सरल किसान को अपनी ओर आकृष्ट कर उसके श्रम का शोषण करता है । वह वर्ग कला, कौशल तथा उद्योग की उन्नति को ही अपने अस्तित्व का आधार स्वीकारता है । प्रेमचन्द ने पूँजीवादी - संस्कृति के उत्पाद औद्योगिक सभ्यता के परिणामों का निरूपण " रंगभूमि" के पात्र जनसेवक को आधार बनाकर सम्यक रूप से उपस्थित किया है । उन्होंने उद्योगपति की दूर-दर्शिता, चालाकी और स्वार्थ - साधना तत्परता का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है । जनसेवक को अपना उद्योग प्रतिष्ठान स्थापित करने के लिए भूमि की आवश्यकता है, वह भूमि समाज के निम्न एवं निर्बल वर्ग की है । वह उनके रहन-सहन, वृत्ति - प्रवृत्ति का अनुमान करके तदनु-कूल व्यवस्था करना चाहता है ।अपने आढ़त के गोदाम के समीप ही ताड़ी और शराब की दूकान खोलने के लिए योजना बनाता है = अपने सहयोगी ताहिर अली से इस योजना के सम्बन्ध में कहता है --

" मेरा इरादा है कि म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहेब से मिल-कर यहाँ एक शराब और ताड़ी की दुकान खुलवा दूँ। तब

आस-पास के चमार यहाँ रोज आयेंगे और आपको उनसे मेल-जोल पैदा करने का मौका मिलेगा । आजकल इन छोटी- छोटी चालों के बगैर काम नहीं चलता ।१।

"रंगभूमि का जनसेवक अपनी छल - बुद्धि और वाकचातुर्य से पांडेयपुर में उद्योग प्रतिष्ठान हेतु नगर प्रधान राजा महेन्द्र कुमार सिंह एवं जिलाधीश की सहायता से अन्ततः निम्नवर्गीय निर्बल सूरदास की भूमि प्राप्त कर लेता है । जानसेवक वस्तुतः पू र्ण स्वार्थी प्रवृत्ति का मनुष्य है किन्तु जन सामान्य के समक्ष स्वयं को अपनी भाषण- कला के माध्यम से उद्योग-स्थापित हो जाने पर उससे अनेकशः लाभ होने की सम्भावना का उद्घाटन करता तथा एक परम हितैषी रूप में प्रकट करता । यह उसे पूर्णतः अनुमान है कि मात्र भूमि - प्राप्ति उद्योग-प्रतिष्ठान में कभी भी सहायक नहीं हो सकती, जन सामान्य के प्रबल सामूहिक विरोध का सामना भी करना पड़ेगा । अतः वह ग्राम- निवासियों को अपना पक्षधर बनाने के उद्देश्य से वह व्यवसायियों को कारखाने से होने वाले विभिन्न लाभों की चर्चा करता है । इतना ही नहीं बालकों की शिक्षा के लिए स्कूल भी स्थापित करने का घोषणा भी करता है । वह देश सेवा का भी सुन्दर आडम्बर रचता है, कुँवर भरता सिंह को हिस्सा खरीदने का प्रलोभन देते समय अनेकशः लोभ एवं लाभों की परिगणना करता है —

" इस सिगरेट के कारखाने से कम से कम एक हजार आदमियों

१। रंगभूमि / पृष्ठ 4

के जीवन की समस्या हल हो जायेगी और खेती के सिरसे उनका बोझ टल जायेगा । जितनी जमीन एक आदमी अच्छी तरह जोत - बो सकता है, उसमें घर भर का लगा रहना व्यर्थ है । मेरा कारखाना ऐसे बेकारों को अपनी रोटी कमाने का अवसर देगा [1]

× × × × ×

"व्यवसायी लोग इन गोरखधंधों में नही पड़ते, उनका लक्ष्य केवल वर्तमान परिस्थितियों पर रहता है। हम देखते है कि इस देश में विदेश से करोड़ो रुपयों के सिगरेट और सिगार आते हैं । हमारा कर्तव्य हैं कि इस धन प्रवाह को विदेश जाने से रोके । इसके बगैर हमारा आर्थिक जीवन कभी पनप नही सकता । [2]

ये पूँजीवादी- संस्कृति के वरद पुत्र , उद्योग - प्रतिष्ठानों की स्थापना एवं उनसे निर्बल वर्ग को अपनी जीविका के लिए स्वर्ण = अवसर का मोहक आश्वासन देकर, वह वस्तुत: अपने निहित स्वार्थ को चतुरता के साथ छिपाना चाहते हैं । वे अपनी करुणा-शिल- लोककल्याण परक कपटपूर्ण बातों के माध्यम से लुब्धक द्वारा जाल बिछाकर उस पर अन्न - कण बिखेरनेकी भाँति श्रमिक रूप मृगों को फंसाने का यह उपक्रम करते हैं ।

---

1. रंगभूमि / पृष्ठ 44
2. वही / पृष्ठ 44

फंस जाने के पश्चात् फिर उनका कल्याण कहाँ सम्भव है ? अर्थ यह कि श्रमिक शोषण इस पूँजीवादी संस्कृति का परम लक्ष्य है। उद्योगपति मजदूर का शोषण ही नहीं अपितु उनके नैतिक पतन के लिए भी। निरन्तर प्रयत्नशील रहना अपना धर्म स्वीकारता है। पूँजीपतियों के शोषण-व्यापार का चित्रण प्रेमचन्द ने "रंगभूमि", गोदान, गबन" आदि में अत्यन्त सूक्ष्मता से उपस्थित किया है। पूँजीपति प्रायः क्रूर, निष्करुण होते हैं, ऐसे ही एक सेठ करोडीमल के व्यवहार का कथन "गबन" का देवीदीन खटिक करता है --

> "उसे पापी कहना चाहिए, महापापी। दया तो उसके पास से होकर भी नहीं निकलती। उसकी जूट की मिल है। मजदूरों के साथ जितनी निर्दयता इसकी मिल में होती है, और कहीं नहीं होती। आदमियों को हण्टरों से पिटवाता है हण्टरों से। चरबी मिला घी बेंचकर इसने लाखों कमा लिए। कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे तो तुरन्त तलब काट लेता है।[1]

"रंगभूमि" में अनेक ऐसे चित्रण मिलते हैं जिससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि इन उद्योग प्रतिष्ठानों में कार्यरत श्रमिक नैतिक पतन के पात्र बन जाते उनका निश्छल पवित्र जीवन कलुषित होकर, उसको सदा सदा के लिए घृणास्पद बना देता है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र सूरदास, जिसकी भूमि पर कारखाना स्थापित हुआ, वह उद्योग प्रतिष्ठान की स्थापना तथा

---

1. गबन / पृष्ठ 160

उसके कार्य व्यापार से, सम्पूर्ण पाण्डेपुर का परिवेश कलुषित हो सकता है, इस कल्पना मात्र से सिहर उठता है । प्रतिष्ठान ने वस्तुतः ग्रामीण जीवन को पतित बनाने में सफल होने लगा । प्रेमचन्द के शब्दों में ----

" मिल के विदेशी मजदूरी, जिन्हे न विरादरी का भय था, न सम्बन्धियों का लिहाजा, दिन भर तो मिल में काम करते रात को ताड़ी - शराब पीते । जुआ नित्य होता था । ऐसे स्थानों पर कुलटाएं भी आ पहुँचती हैं । यहाँ भी एक छोट -मोटा चकला आबाद हो गया था ।[1]

"गोदान " में प्रेमचन्द ने कृषक होरी - पुत्र "गोबर" के नैतिक पतन और श्रमिकों के शोषण से उत्पन्न समाज की कलुषता, जीवन के निंद्य-बिन्दुओं का स्पष्ट उल्लेख किया है । गोबर दिन भर काम करने की श्रान्ति दूर करने के लिए मिल में कार्यरत अन्य मजदूरों के समान ताड़ी और शराब का सेवन करने लगता है । खन्ना तथा प्रो० मेहता के वार्तालाप में मजदूरों की वास्तविक स्थिति अंकित हैं -

" मजूर बिलों में रहते हैं - गन्दे, बदबूदार बिलों में - जहाँ आप एक मिनट भी रह जाय तो आपको कै हो जाय । कपड़े जो वह पहनते हैं उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे । खाना जो वे खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खायेगा ।[2]

---

1. रंगभूमि / पृष्ठ 439
2. गोदान / पृष्ठ 291

उद्योग प्रतिष्ठानों के स्वामी प्राय: अपने अधिकाधिक लाभ से मोहाकान्त स्वार्थान्ध हो श्रमिक वर्ग की सुख - सुविधा का किंचिदपि ध्यान नहीं रखता । उनका लाभ प्रति स्थिति में आवश्यक है । प्रतिष्ठान के उत्पाद पर यदि किसी कारणंवश उत्पाद शुल्कादि शासन की ओर से बढ़ा तो प्रतिष्ठान स्वामी उसकी पूर्ति निश्चित रूप से वह अपने श्रमिकों का वेतन कम करके करना संगत समझता है । यह स्थिति आज भी है । और प्रेमचंद के युग में भी थी । "गोदान" उपन्यास में ऐसा ही घटना का उल्लेख मिलता है । शक्कर पर ड्यूटी- वृद्धि होने से क्षति पूर्ति के लिए मिल स्वामी खन्ना श्रमिकों के वेतन में कटौती का निर्णय लिया । उसके विरोध में हड़ताल होती है । हड़ताल को दबाने के लिए शक्ति का प्रयोग और श्रमिकों की नयी नियुक्तियां प्रारम्भ होती है। श्रमिक के दो दल हो जाते हैं । तमाम श्रमिक एवं उनके नेता घायल होते हैं । प्रतिष्ठान में आग लगा दी जाती है । प्रेमचन्द का अंकन --

> "मिल करीब - करीब पूरी जल चुकी है लेकिन उसी मिल को फिर से खड़ा करना होगा । मिस्टर खन्ना अपनी सारी कोशिशें इसके लिए लगा दी है । मजदूरों की हड़ताल जारी है मगर अब उससे मिल के मालिकों को कोई विशेष हानि नहीं है । नये आदमी कम वेतन पर मिल गये हैं और जी तोड़करकाम करते हैं । क्योंकि उसमें सभी ऐसे हैं जिन्होंने बेकारी का कष्ट भोग लिया है और अब अपना वश चलते, अब ऐसा काम करना नहीं चाहते जिससे उनकी जीविका में बाधा पड़े । चाहे जितना काम

> लो, चाहे जितनी कम छुट्टियां दो, उन्हे कोई शिकायत नहीं। सिर झुकाये बैलों की तरह काम में लगे रहते हैं । घुड़कियों, गालियां, यहाँ तक कि डण्डों की मार भी उनमें ग्लानि नहीं पैदा करती । और अब पुराने मजदूरों के लिए इसके सिवा कोई मार्ग नहीं रह गया है कि इस घटी हुई मजदूरी पर काम करने आयें और खन्ना साहब की खुशामद करें ।[1]

कथाकार प्रेमचन्द भारतीय समाज की अन्तर्भूत मूल्यों , उनसे संस्पृष्ट समस्याओं उनके बाह्याभ्यन्तर प्रभावों का सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले रचनाधर्मी हैं । तीव्र संक्रान्ति युगीन समाज का सूक्ष्म निरीक्षण करने के परिणाम स्वरूप ही प्रेमचन्द ने तत्कालीन कृषक- समाज के उत्पीड़न, आर्थिक असंतुलन के मूलभूत कारणों- परम्परित जमींदारी प्रथा एवं पूँजीवादी - सभ्यता से फैल रहे सामाजिक दूषण का सफलतापूर्वक अंकन को अपने उपन्यास तथा इतर कथासाहित्य में सन्निविष्ट किया । पूँजीवादी सभ्यता के फलस्वरूप प्राचीन जीवन मूल्य अपनी अर्थवत्ता नहीं स्थापित कर पा रहें थे, उनकी सार्थकता की भूमि पर समग्र परिवेश में तीव्रगति से परिवर्तन परिलक्षित होने लगे थे । "रंगभूमि" उपन्यासों में सामन्ती परम्परा और पूंजीवादी सभ्यता के संघर्ष पूँजीवादी सभ्यता की वर्चस्व प्रतिष्ठा का अत्यन्त ही स्पष्ट चित्रण मिलता है । औद्योगिक अर्थव्यवस्था एवं ग्रामीण आर्थिक स्थितियों में अन्तर होने से दोनो घोर संघर्ष अनिवार्य रहा । "रंगभूमि" का नायक

---

1. गोदान / पृष्ठ 307

निम्नवर्गीय निर्बल सूरदास औद्योगिक अर्थव्यवस्था के अभिशपक्ष से पूर्णतः परिचित है, इस कारण उद्योग - प्रतिष्ठान की स्थापना का उसका विरोधी स्वर मुखर हो उठता है -

"जहाँ तक रौनक बढ़ेगी वहाँ ताड़ी-शराब का भी तो परचार बढ़ जायेगा । कसबियाँ भी तो आकर बस जायेंगी, परदेशी आदमी हमारी बहू बेटियों को घूरेंगी, कितना अधरम होगा । दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजदूरी, के लालच से दौड़ेंगे यहाँ बुरी- बुरी बातें सीखेंगें और अपने बुरे आचरण अपने गाँव में फैलायेगें । दिहातों की लड़कियां, बहुएं मजदूरी करने आयेंगी और यहाँ पैसे के लाभ में अपना धरम बिगाड़ेगी । यही रौनक शहरों में हैं, वहीं रौनक यहाँ भी हो जायेगी ।[1]

ग्रामीण तथा औद्योगिक अर्थ व्यवस्था का प्रेमचन्द ने न केवल यथातथ्य - चित्रण किया है, अपितु उन्होंने उन बिन्दुओं का भी निरीक्षण किया जो आर्थिक - असन्तुलन के लिए सम्मिलित रूप से उत्तरदायी है । ग्रामीण कृषकों को आर्थिक दुरवस्था के लिए जमींदारी प्रथा एवं श्रमिकों की विषम स्थिति के लिए औद्योगिक विकास को वह आधार स्वीकारते है । औद्योगिक विकास का मूल है " पूँजीवादी सभ्यता" इस पूँजीवादी सभ्यता को प्रेमचन्द " महाजनी सभ्यता से अभिसंगित करते हैं । एक मात्र साधन है,

---

1. रंगभूमि / पृष्ठ 77

यह सभ्यता सर्वतोभावेन पूँजीपतियों तथा महाजनों के लिए सम्पत्ति लाभ का एक मात्र साधन है, दोनो ही परस्पर अन्योन्याश्रित हैं । पूँजीवादी सभ्यता का व्यापक प्रभाव है, समाज का प्रत्येक जन इसके प्रभाववश प्रत्येक कार्य व्यापार में धन- लाभ की प्रवृत्ति से आक्रान्त है । अर्थ यह किधर्म ईमान तथा नैतिकता को धनशक्ति ने सहज ही आत्मसात कर लिया। प्रेमचन्द ने लिखा है -

" धन - लोभ ने मानव भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है । कुलीनता और शराफत, गुण और कमाल की कसौटी पैसा और केवल पैसा है । जिसके पास पैसा है वह देवता - स्वरूप है, उसका अन्त:करण कितना ही काला क्यों न हो ? साहित्य, संगीत और कला - सभी धन की देहली पर माथा टेकने वालों में हैं । यह हवा इतनी जहरीली है कि इसमें जीवित रहना कठिन होता जा रहा है । डाक्टर और हकीम हैं कि वह बिना लम्बी फीस लिए बात नहीं करता । वकील और बारिस्टर है कि वह मिनटों को अशर्फियों से तौलता है । गुण और योग्यता की सफलता उसके आर्थिक मूल्य के हिसाब से मानी जा रही है ।[1]

समाज की निश्छलता, सामूहिक कल्याण भावना पारस्परिक सहयोग सौन्दर्य के अमृत प्रवाह को धन के पंकिल - जलपूर्ण स्रोत से कलुषित करने वाली -

---

1. महाजनी - सभ्यता : प्रेमचन्द "स्मृति" / पृष्ठ 258

धनिकों को पूँजीवादी संस्कृति ने जो समाज की ऋजुता में सुख-सौविध्यपूर्ण परिवेश में विष- वैषम्य का अवतरण कर दिया, उससे प्रेमचन्द का अन्त:मन उद्वेलित हो तड़प उठता है, उन्होंने इसकी अपने समग्र कथासाहित्य में कटु-भर्त्सना संवलित विरोध को स्वर दिया। इसके दुष्परिणामों से बचने के लिए जन-मानस को जागृत करने और निवारण के उपायों के संचयनार्थ बुद्धि - विवेक को संतुलित करने का आवाहन किया है । उनके उपन्यास कर्मभूमि का "अमर" तत्कालीन सामाजिक - व्यवस्था के प्रति घोर असन्तोष व्यक्त करता हुआ स्पष्ट कहता है —

> " एक आदमी दस रुपये में गुजर करता है दूसरे को दस हजार क्यों चाहिए ? यह धांधली उसी वक्त तक चलेगी जब तक जनता की आँखे बन्द हैं ।[1]
>
> × × × ×
>
> यदि एक मजूर 5 रु0 में अपना निर्वाह कर सकता है तो एक मानसिक काम करने वाले प्राणी के लिए इससे दुगुनी, तिगुनी, आय काफी होनी चाहिए और यह अधिकता इसलिए कि उसे कुछ उत्तम भोजन- वस्त्र तथा सुख की आवश्यकता होती है । मगर पाँच और पाँच हजार पचास और पचास हजार का अस्वाभाविक अन्तर क्यों हो ?[2]

---

1. कर्मभूमि / पृष्ठ 122
2. पशु से मनुष्य : मानसरोवर भाग -8 / पृष्ठ 115

इस विवेचन से स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है कि रचनाकार प्रेमचन्द अपने युग को पूर्ण सजगता से देखा और परखा था। वह तीव्र संघर्षों का युग था। वास्तविक संघर्ष आत्महित एवं सार्वजनिक हित का था जिसमें एक ओर उच्च अट्टालिकाएं और उसमें भोग विलास के उपकरण जुटाने की होड़ वश वर्ग विशेष को मिट्टी निर्मित अथवा घासफूस से निर्मित झोपड़ी रूप घरों में निवसने तथा कठिनाई से एक जून'रोटी खाकर जीवन निर्वाह करने के लिए विवश होना पड़ता है। प्रेमचन्द जी के इस दूषित सामाजिक-व्यवस्था, जिसमें आर्थिक - विषमता चरम सीमा पर हो, के प्रबल विरोधी हैं।

धर्म की असामाजिकता :-

प्रेमचन्द युग में धर्म एक आडम्बर एक वंचना और एक भुलावा बनकर परिव्याप्त था। श्रेयस तथा श्रेयसवाला उसका आन्तरिक पक्ष बाह्याडम्बर से सम्पूर्णत: आच्छन्न हो गया था। धर्म लोक संग्राहक न रहकर विग्राहक एवं विघटन कारी बने रहा था, साधना के लिए नही वह तो अब साध्य का रूप धारण कब रहा था। समाज में असंघटन के उपकरण जुटाकर असामाजिकता का पोषक बन रहा था। धर्म का लोकेषणा बोधक व्यापक स्वरूप सिमटकर मात्र नियमबद्ध कर्मकाण्ड प्रक्रियाओं मन्दिरमठों में धर्माडम्बर - जनित अनाचारों, महन्त मठाधियों की सेवा मन्दिर प्रतिष्ठित देव प्रतिमाओं, के नाम पर वहां के मठपति पुजारी - महन्त की उपभोग वस्तुओं का तथाकथित देव के प्रति आस्था प्रकटनार्थ अर्पण पण्डा, पुरोहितों द्वारा संकेतित धर्म-क्रिया के संपादन एवं उनके चरण

पूजन धर्म पोषित धूर्तता कर्मकाण्ड विद होकर लोक कल्याण मार्ग प्रसस्त करने वाले मिथ्याभिमानी जन के लोक- संग्राहक रूप, अन्धविश्वासों, आदि में समाहित हो गया था। प्रेमचन्द ने समाज के ऐसे धर्माचार्यों के आचरण का अंकन और उनके मिथ्याप्रचार के परिणाम स्वरूप जनमानस पर छाये धर्मभीरुता के आतंक को भी निरूपित किया है। सामूहिक उपासना स्थल मन्दिर वर्ग विशेष के एक व्यक्ति की विलास लीला के साधन बनें। देस-भाग के नाम पर मुफ्त मेवा -पकवान ग्रहण करने वाले पुजारियों, मठा-धियों में व्यसन प्रवृत्ति जगी और उनकी चरित्रिक शुचिता ह्रासोन्मुखी होने लगी। उपासना स्थान प्रकारान्तर से अनाचार के केन्द्र बन गये। तत्कालीन धर्माडम्बर धर्माचार्यों के कार्य-कलाप एवं मन्दिर मठों में व्याप्त दुराचार धूर्तता को पूरी - पूरी सीमा तक प्रेमचन्द ने उजागर किया। मठाधिपों के कपटाचरण द्वारा ठगी जानेवाली सरल हृदय जनवर्ग की अधि-कतम संख्या धन और धर्म अपना सब कुछ गॉवाँ कर हताश हो रह जाती, उसके लिए कोई सहायक नहीं। भोली - भाली जनता को देव विशेष के चढ़ावा रूप भोग सामग्री प्राप्त कर धन वैभव के स्वामी बने "सेवासदन" के महन्त रामदास तथा "कर्म भूमि" के महंत आशाराम गिरि के आचरण तथा उनके शोषण हथकण्डों का सटीक वर्णन किया है। उर्दू उपन्यास असरारे मशाविद, महादेव लिंगेश्वरनाथ मन्दिर के महन्त त्रिलोकी के स्व-रूप एवं आचरण का व्यंग्यात्मक चित्रण उपस्थित करता है -

यह जो आप महन्त जी के माथे पर लाल निशान देख रहे हैं।

यह चन्दन के निशान नहीं, बल्कि इस बात को सिद्ध कर रहे हैं कि हजरत ने न्याय और धर्म का खून कर डाला है । आप जो उसके गले में मोहनमाला देख रहे हैं, यह असल में लोभ का फंदा है जो आपको खूब दबाकर जकड़े हुए है । फिर यह तिरछी रखी हुई टोपी आपकी अक्ल के तिरछेपन को जाहिर कर रही है । आपके शरीर पर रंग बिरंगी मिर्जई नहीं है, बल्कि अंधविश्वासियों को सब्जबाग दिखाने का यंत्र है जो आपके हृदय के अन्धकार और कालिमा के ऊपर पर्दे की तरह पड़ा हुआ है ।[1]

यह तो है मठाधिपति का ढोंगी स्वरूप अब देखिए धर्माचार्यों की विलासिता का एक चित्रण ----

"सुमन ने खिड़की से आंगन में झाँका तो क्या दिखती है वही उसकी पड़ोसिन बैठी हुई गा रही है । सभा में एक से एक बड़े आदमी बैठे हुए थे, कोई वैष्णव तिलक लगाए कोई भस्म रमाये, कोई गेरूए वस्त्र पहिने, गले में कण्ठी माला डाले और राम - नाम की चादर ओढ़े । उनमें से कितनों ही को सुमन नित्य गंगास्नान करते देखती थी । वह उन्हें धर्मात्मा, विद्वान समझती थी । वही लोग यहाँ इस भांति तन्मय हो रहे थे, मानों स्वर्गलोक में पहुँच गये हैं । भोली जिसकी ओर कटाक्षपूर्ण नेत्रों से देखती थी वह मुग्ध हो जाता था, मानों साक्षात् राधाकृष्ण के दर्शन हो गये ।[2]

---

1. असरारे मशविद / पृष्ठ 5
2. सेवासदन / पृष्ठ 22

प्रेमचन्द का कथा साहित्य मंदिर - मठ एवं ठाकुरद्वारों में पल रहे अनाचार, शोषण आडम्बर, स्वार्थान्धता विलासिता, का जीता- जागता चित्रण उपस्थित करता है । सरल हृदय जनता देव - विशेष की उपासना के नाम पर अपना सर्वस्व लुटाकर कल्याण की कामना करता है, होता उसके विपरीत हैं । कल्याण तो होता मठाधिप, पुजारी तथा महन्त के चेलों का , वह सब अच्छा-अच्छा पकवान खाते और अन्य सांसारिक भोग विलास की सामग्री का उपभोग कर स्वर्गोपम सुख लूटते हैं । जनता का शोषण ही होता है ।धार्मिक रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों पर अपनी वाणी पटुता से भोली- भाली जन-मानसिकता को प्रभावित कर आस्था दृढ़ करके पण्डे एवं पुरोहित उन्हे चूसते हैं, स्वयं जीविका का साधन प्राप्त करते, जनता को कल्याण के नाम पर दीनता का ग्रास बनाते रहते हैं । महन्त आशारामगिरि का वैभव विलास किसी भी महान धन-पुरुष की अवहेलना करता है ---

> अमर दाहिने दरवाजे से अन्दर घुसा तो देखा चारों तरफ चौड़े बरामदे और भण्डार हो रहा है । कहीं बड़ी बड़ी कड़ाहियों में पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ बन रही है, कहीं भाँति- भाँति की शाक भाजी चढ़ी हुई है, कहीं दूध उबल रहा है, कहीं मलाई निकाली जा रही है । बरामदे के पीछे कमरों में खाद्य सामग्री भरी हुई थी । ऐसा मालूम होता था कि अनाज, शाक भाजी, मेवे, फल मिठाई की मंडियाँ हैं ।एक पूरा कमरा तो केवल परवलों से भरा हुआ था । इस मौसम में परवल कितने मंहगे होते है , पर

यहाँ व भूसे की तरह भर हुए हैं ।१।१

यह सारा का सारा एकत्रित सामान कहाँ से आया ? उत्तर एक मात्र - भोली-भाली धर्मभीरु जनता की ठगी । क्यों कि यह सम्पूर्ण उपक्रम ठाकुर जी के नाम पर होता है । वह ठाकुर जो पाँच - पाँच मन दूध से स्नान करते हैं । कर्मकाण्ड विषयक अधिकाधिक पटुता धर्मविषयक सभी नियमों के पालन सम्बन्धी मिथ्याभिमान की आड़ में भाँति- भाँति के दुराचार एवं आर्थिक अन्याय की प्रतिमूर्ति "गोदान" का पात्र दातादीन क्या-क्या नहीं करता ? धर्म - अधर्म का निर्णायक वही है । वह निर्धन कृषकों को व्याज पर ऋण देकर उन्हें अपने महत्व स्वीकारने के लिए विवश करता है । अपने रुपये एवं उसके व्याज की वसूली में वह रंचमात्र भी सदय नहीं । उसका पुत्र मातादीन का सिलिया चमारिन से अवैध सम्बन्ध है । झिंगुरीसिंह जब मातादीन और सिलिया के अवैध सम्बन्ध की भर्त्सना करता है तो दाता-दीन सदम्भ कहता है -----

> " कोई हमारी तरह नेमी तो बन ले । कितनों को जानता हूँ, जो कभी सन्ध्या बंदन नहीं करते , न उन्हें धर्म से मतलब, न करम से, न कथा से मतलब न पुरान से । वह भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं । हमारे ऊपर क्या हँसेगा कोई, जिसने अपने जीवन में एक एकादशी भी नागा नहीं की, कभी बिना स्नान -

---

1. "कर्मभूमि" / पृष्ठ 295

पूजन किए मुँह में पानी नहीं डाला । नेमा का निभाना कठिन है । कोई बता दे हमने कभी बाजार की कोई चीज खायी हो या किसी दूसरे का हाथ का पानी पिया हो तो उसकी टाँग राह निकल जाऊँ । सिलिया हमारी चौखट नहीं लाँघने पाती, चौखट बर्तन-भाँड़े छूना तो दूसरी बात है ।[1]

अपने युग में पल रहे धर्म को प्रेमचन्द आडम्बर स्वीकारते रहे, अन्ध-विश्वास की भावना को दृढ़ करने वाला, सहज मन निर्बल जनों को शोषित करने का माध्यम, क्रूरताओं, अनाचारों का प्रेरक मानवीय मूल्यों का व्यवधान मूलक, मस्तिक की स्वतंत्र चेतना को आक्रान्त कर कुण्ठित बनाने वाला, भाग्यवादिता को पोषक मनुष्य को मानसिकरूप से कातर, भीरू कर देने का मार्ग, मनुष्य को पौरुष- विहीन करके अकर्मण्य करने वाला एवं पाण्डे, पुरोहितों, मठाधिपों, मन्दिर के पुजारियों के स्वार्थ साधन का सशक्त माध्यम है । धन पुजारियों का आराध्य, धनोपार्जन का आधार ----

"ईश्वर मन की एक भावना है । इसके लिए मन्दिरों, मस्जिदों गिरिजाघरों की आवश्यकता नहीं । वह घट- घट व्यापी है, एक एक अणु में उसकी ज्योति है । वह पूजा की कमाई पर चैन करने वाला राजा नहीं । × ×× जो लोग ईश्वर की धुन में

---

1. गोदान / पृष्ठ 249

"मातादीन को कई सौ रुपये खर्च करने के बाद अन्त में काशी के पण्डितों ने फिर से ब्राहमण बना दिया । उस दिन बड़ा भारी हवन हुआ । बहुत से ब्राहमणों ने भोजन किया और बहुत से मंत्र और श्लोक पढ़े गये । मातादीन को शुद्ध गोबर और गोमूत्र खाना पीना पड़ा । गोबर से उसका मन पवित्र हो गया । मूत्र से उसकी आत्मा में अशुचिता के कीटाणु मर गये ।[1]

छुआछूत की विषम सामाजिक संकीर्णता के मूल में धार्मिक - भावना कम, - धार्मिक आडम्बर तथा समाज के निर्बल - निम्न वर्ग को शोषित करने का माध्यम अधिक है । वस्तुत: धर्म के तथाकथित आचार्य- ठेकेदारों का ऐसा बना हुआ ताना-बाना है, जिससे निर्मित जाल में आबद्ध दीन-दलित जन अपना सर्वस्व लुटाकर भी उपास्य के प्रति अपनी आस्था तक नहीं प्रदर्शित कर पाता व्यापक धर्म को ढोंग का आवरण देकर, धर्म के तथाकथित ठेकेदार अपनी मुट्ठी में समेटे बैठे हैं, जब इच्छा हुई मुट्ठी तनिक ढीली कर दी उसकी ज्योति से जगमगा, उस जगमगाहट में भी दलित वर्ग आँख नहीं खोल सकता। दलित- जन के स्पर्श मात्र से धर्म के ठेकेदारों का धर्म भ्रष्ट हो जाता है । ब्रह्मचारी पुजारी लाल- लाल आँखे निकाल कर कहते हैं बात क्या है । यहाँ लोग भगवान को कथा सुनने आते हैं कि अपना धर्म भ्रष्ट करने आते

---

1. गोदान / पृष्ठ 347

बड़े-बड़े महल बनवाते हैं । ईश्वर इसमें रहेगा। वे असीम की चहार दिवारों में बन्द करके व्यापक ईश्वर का अपमान करते हैं और जो लोग उसकी प्रतिमा बना कर उसका श्रृंगार करते हैं, भोग लगाते हैं, विवाह करते हैं, उसके नाम की माला जपते हैं वह तो ईश्वर को खिलौना बनाकर ऐसा पाप करते हैं जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं । × × × ईश्वर की उपासना का केवल एक मार्ग है और वह है मन, वचन और कर्म की शुद्धता, अगर ईश्वर इस शुद्धता का प्राप्ति में सहायक हैं, तो शौक से उसका ध्यान कीजिए ।(1)

प्रेमचन्द साहित्य का अधिकांश भाग ऐसे स्पष्ट एवं कटु चित्रणों से भरा है, जहाँ तत्कालीन समाज में व्याप्त मिथ्या धर्माचरणों पर व्यंग्य और प्रहार किया गया है । धार्मिक - बाह्याडम्बर द्वारा समाज का समग्र आक्रान्त होकर लोकैषण की सुख छाया तक को कलुषित कर डाले हैं । छूआ छूत को धर्म निरूपति करने वाले मातादीन के मुख में चमारों द्वारा बलपूर्वक हड्डी डाल देने के कारण, वह स्वभावत: निज धर्म से च्युत हो जाता है । पुन: ब्राह्मण - धर्म में प्रतिष्ठित होने के लिए उसे प्रायश्चित करना आवश्यक हो उठता है। प्रायश्चित्त की इस आडम्बर पूर्ण क्रिया का वर्णन प्रेमचन्द ने बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है ---

---

1. विविध प्रसंग : भाग- 3 अमृतराय / पृष्ठ 154

है, भंगी, चमार जिसे देखो घुस जाता है । ठाकुर जी का मन्दिर न हुआ, सराय हुई ।" मंदिर के अखाड़ों के ठेकेदारों, भगवान के भक्त कहलाने वालों की उद्दण्डता, अपमान- हीनता और अहंकार का यथार्थ चित्रण प्रेमचन्द ने किया है । एक हाथ में पूजा की थाली और गोद में बच्चे को लेकर खड़ी सुखिया को देखकर भक्त ने शंका व्यक्त की" - क्यों अब यह चमारिन परमात्मा को छुएगा ? सत्यानाश हो गया । अब प्रलय होने में देर नहीं ।[1]

" प्रेमचन्द धर्म के ढोंग का हर स्थान पर भण्डाफोड़ करते हैं । रंगभूमि" में सोफिया और प्रभुसेवक दोनों धार्मिक पाखण्ड की खिल्ली उड़ाते हैं । उनके माता-पिता का धर्म ढकोसला है, दादा का धार्मिक रूप कोरा पाखण्ड है । पिता जानसेवक सातवें दिन गिरिजाघर जाते हैं, पर वहाँ भी धन के देवता की पूर्ति का ही जाप करते हैं । दादा ईश्वर सेवक ईश्वरभक्ति का दंभ रखता है पर है पहले दर्जे का दुष्ट और कंजूस । [2]

प्रेमचन्द सामाजिक - चेतना के कथाकार हैं । समाज के स्वरूप का विघटन उसके परिवेश का दूषण उसकी शुचिता का हरण, उसके सौहार्द्र = सौमनस्य पर आघात के मूल में विष घोल रहे धार्मिक- आडम्बर की उन्होंने तीखी

---

1. प्रेमचन्द : एक सिंहावलोकन / प्रो० श्री साने / पृष्ठ 76
2. उपन्यासकार प्रेमचन्द और उनका गोदान :डॉ० कृष्ण देव झारी पृष्ठ 56

आलोचना करना रचनाकर्म का धार्मिक माना। धर्म के बाह्याडम्बर से ग्रस्त जन मानस धर्म के वास्तविक रूप को परिकल्पित ही नही कर पाता। पण्डा, पुरोहितों की स्वार्थपरता विविध रूपों में धर्म को परिभाषित कर जलकल्याण की ललक में जन सामान्य को अत्यन्त सहज भाव से वशवर्ती बनाता एवं यथारूचि उनका शोषण करती । गेरूए वस्त्र धारण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति जनता के लिए निष्कपट हृदय लोककल्याणकारी महात्मा रूप होता उसके ललाट पर लगा तिलक, उसका सन्ध्या-वन्दन का नियम अकस्मात ही जनमन को श्रद्धाभिभूत कर देता है । इस धर्म के मिथ्याभिमान पाखण्ड और थोथी नियम बद्धता के व्यापार का कथन उपन्यास "सेवा-सदन" में गजाधर प्रसाद बड़े ही सत्य - तथ्य के साथ करता है -----

> आजकल धर्म तो धूर्तों का अड्डा बना हुआ है। इस निर्मल सागर में एक से एक मगरमच्छ पड़े हुए हैं । भोले- भाले भक्तों को निगल जाना उनका काम है । लम्बी लम्बी जटाएं, लम्बे- लम्बे तिलक छापे और लम्बी लम्बी दाढ़ियाँ देखकर लोग धोखे में आ जाते हैं, पर वह सबके सब महापाखण्डी, धर्म के उज्ज्वल नाम को कलंकित करने वाले धर्म के नाम पर टका कमाने वाले, भोग-विलास करने वाले पापी हैं ।[1]

मानवतावादी रचनाकार प्रेमचन्द की दृष्टि में देवोपासना, यज्ञ- अर्चन, मन्दिर मठ आदि धर्म - स्थल धर्म के प्रतिष्ठापक नहीं अपितु तत्कालीन धर्म - व्यवस्थापकों के निहित स्वार्थपूर्ति के अर्थ साधक हैं। इस कारण

धर्म जो हमारे समाज का संगठक, सामूहिक विकास की ओर अभीमुख करने वाला, आत्माभ्युत्थान, लोककल्याण, उत्प्रेरक, समष्टिभाव उद्बोधक रहा है, वही अब एक वर्ग विशेष अथवा कतिपय व्यक्ति विशेष की हित साधना का साधन, उसके विकास, सुखोपभोग का कारक, व्यक्तिवाद का संस्थापक बन कर हमारी सामाजिक एकता के लिए अवरोधक हो चुका है। युग की भावना के अनुकूल, धर्माचरण के भाव मात्र धार्मिक - पाखण्ड तथा धूर्तता द्वारा निज हित साधन- साधना में परिलक्षित होते हैं । प्रेमचन्द ऐसे धर्माचरण को स्वयं धर्म को कलंकित करने वाला स्वीकारते हैं । मानव मानव के विभेदक भावों से पूर्ण आचरण धर्माचरण कैसे हो सकता है । धर्म से तो सम्भाव, लोकहित, सदयता, सार्वजनीनता, उदात्तता का बोध होना चाहिए न कि समाज में वैसम्य, दैन्य पृथकत्व भावो× की प्रतिष्ठा का मूल । अपने इस दृष्टिकोण को मूर्त रूप देने के लिए प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों - "सेवासदन" में स्वामी गजानन्द, "प्रेमाश्रम" में प्रेमशंकर, कर्म-भूमि" में अमर, " गोदान" में मेहता, और रंगभूमि में सूरदास" जैसे उदात्त भावों वाले पात्रों की परिकल्पना कर अपने उद्देश्य की सफल प्रतिस्थापना की है । प्रेमचन्द की दृष्टि में व्यक्ति प्रकृत्या सज्जन अथवन दुर्जन नहीं होता । परिस्थितियाँ कारक बनती हैं । सत् एवं असत् भाव प्रत्येक मनुष्य में अनिवार्यत: रहते हैं, परिस्थिति , संगति के अनुकूल उनकी उद्-भावना के क्षण उपस्थित होते हैं। असत्- वृत्ति का भी पर्यवसान सत् वृत्ति मूलक भावों में हो सकता है । ऐसे हृदय परिवर्तन के अनेक उदाहरण

उनके कथा साहित्य में उपलब्ध होते हैं । रंगभूमि का सूरदास तो पूर्ण कर्मयोगी रूप है । वह केवल कर्म में विश्वास कर जीवन को रंगभूमि-सदृश स्वीकार, कर्तव्यनिर्वहन में तत्पर रहता है । उसकी सत् वृत्ति उसका सत्याचरण, उसका आत्मबल तथा विश्वास उसमें असीम शक्ति का संचार करता है, वह निर्भय होकर दृढ़ संकल्प के साथ अपने अधिकार - रक्षा और अपने हक की प्राप्ति के लिए संघर्ष करता है ।उच्चातिउच्च अधिकारियों से भी उसे भय का लेश नहीं । क्यों ? इसलिए कि वह - निश्छल सदाचारी और निर्लोभी हैं, उसके हृदय में किसीकेभी प्रति ईर्ष्या, द्वेष तथा मत्सर के भाव नहीं जगते । सत्यनिष्ठा, लोककल्याण दया, क्षमा, उसकी शक्ति है । उसका अन्तःकरण पवित्र है, वह इसे सबसे बड़ी निधि मानता है ।वह राजा महेन्द्रकुमार से कहता है —

> " नेकनामी और बदनामी बहुत से आदमियों के हल्ला मचाने से नहीं होती । सच्ची नेकनामी अपने मन में होती है । अगर अपना मन बोले कि मैं ने जो कुछ किया वही मुझे करना चाहिए था, इसके सिवा कोई दूसरा बात करना मेरे लिए उचित न था, तो वही नेकनामी है ।[1]

कर्मयोगी " सूरदास" जन-जन सत्याचरण, निष्कपटता, कर्मनिष्ठा के भाव जागृत करना चाहता है । " हानि, लाभ, जीवन, मरण, जस, अपजस, विधि के हाथ है, हम खाली मैदान में खेलने के लिए बनाये गये हैं ।

---

1. रंगभूमि / पृष्ठ 506

धार्मिक आडम्बर वस्तुतः छलावा है, आचरण की पवित्रता ही मनुष्य का सम्बल है ।

व्यक्ति को स्वयं के प्रति निष्कपट, ईमानदार और सत्यनिष्ठ रहना, उसकी पूर्णता है । वह पुनः ऐसी ही पूर्णता से समाज को पूर्णत्व प्रदान कर-सकता है । उस पूर्णता में ही जीवन का सत्य उजागर होता है । यही सत्य उजागर होकर जब रूप धरता है तो समाज के प्रति समूह के प्रति हम अपने धर्म का सहज बोध करते हैं । यही हमें मानवीय एकता, समता, उसके हितभावों की रक्षा के लिए उत्प्रेरणा देता है । फिर हम व्यष्टि नहीं, समष्टि के प्रति निष्ठा की वृत्ति का अवबोध कर परमहर्ष का अनु-भव करते हैं, हम समाज निष्ठ धर्म के आचरण की ओर अभिमुख होते हैं । प्रेमचन्द समाजनिष्ठ धर्म के पक्षपाती रचनाकार हैं । प्रेमचन्द परम्परागत धर्म के देवोपासनादि में अन्ध-भावना को केवल वर्ग- विशेष द्वारा प्रतिष्ठित स्वार्थ - पूर्ति का माध्यम स्वीकार व्यक्ति तथा समाज दोनों के कल्या-णार्थ मानव धर्म की प्रतिष्ठा चाहते हैं । इसी से मानव समाज संगठित होकर एकतासूत्र आबद्ध हो सकता है । मानवधर्म का प्रतिपालन प्रत्येक व्यक्ति पवित्र कर्तव्य है । "कर्मभूमि" का अमर रैदास पारस्परिक भेदभाव को दूर कर, परस्पर सहयोग एवं सद्भाव का प्रचार करके समाज - समग्र को सुखी सम्पन्न देखने की कामना करता है । मानव समाज के कल्याण का मूल - मानव मात्र की सेवा में निहित है, अनाचार, वैषम्य आदि से पीडित मानवता की सेवा ईश्वर की सेवा के सदृश हैं " सेवासदन" का स्वामी

गजानन्द अज्ञानान्ध सुमन को उपदेश देते हुए कहता है ---

" अच्छा तो सुनो सतयुग में मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी , त्रेता में सत्य से द्वापर में भक्ति से पर इस कलियुग में इसका केवल एक ही मार्ग है और वह है सेवा । इसी मार्ग पर चलो और तुम्हारा उद्धार होगा । जो लोग तुमसे भी दीन दु:खी है , दलित हैं, उनकी शरण में जाओ और उनका - आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा । कलियुग में परमात्मा इसी दु:ख सागर में वास करते हैं ।[1]

समाज, सामाजिक, सामाजिक अन्त: संघर्ष के भाव उभरते ही हमारी विवेक शक्ति कुटुम्ब के स्वरूप उसकी इयत्ता, उसकी पवित्रता, उसकी विविध समस्याओं एवं उसकी निर्मित विधायक अंगो पर कृकृत्या केन्द्रित हो जाती है । कुटुम्ब ही समाज के संगठन - असंगठन का मूल है । कौटुम्बिक सहयोग और सौहार्द्र ही समाज में सहयोग- सदभाव को अंकुरित पल्लवित और पुष्पित करते हैं, जिसका मुक्त सौरभ पूरे सामाजिक परिवेश को सुवाससुक्त बनाता है । कौटुम्बिक- रसधार से सिक्त समाज रसमय बनकर मानव जीवन को अमृतमय कर देता है । इस कारण प्रेमचन्द का रचनाकार व्यक्ति सजग रहकर कौटुम्बिक रूप स्वरूप उसकी सुचिता

---

1. सेवा-सदन / पृष्ठ 232

उसकी समृद्धि एवं उसके विकास अवरोधक व्यवधानों, विधानों का सत्य विश्लेषण करता दृष्टिगत होता है । उसकी आन्विक्षि की दृष्टि अत्यन्त पैनी है । प्रेमचन्द के रचनाकार व्यक्ति के अवतरण ही सामाजिक परिवेश में घटित जन- जीवन के विषय और सम विस्तार छाया - तले हुआ था, जिसके सुख - दुख का बोध उनका सहज हृदय जब संजो न सका तो अनुभूति, रूप बन कथा साहित्य के माध्यम से उस सामाजिक परिवेश में पलने वाले शिव - अशिव तत्वों का मानव मूल्यों के विस्तृत धरातल पर रूप विरूप की चित्रात्मकता सहित समाज की पवित्र अवधारणा का रूप धर प्रकट हुआ । प्रेम का युग सामाजिक उद्भ्रान्ति का था। मानव मूल्य पाश्चात्य क्रिया कलाप को उत्क्रान्ति में सिमटने लगे थे । ग्राम- जीवन की पवित्र प्राचीन परम्परा ह्रासोन्मुखी परिवार, कौटुम्बिक एवं सामाजिक नैतिक मान्यताएं परिवर्तित तथा संयुक्त परिवार के साथ - साथ संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना नष्ट होने लगी थी । आत्मनिर्भर और आत्मपूरक प्रधान ग्रामीण जीवन पर मुखापेक्षी बन रहा था, परिणामत: ग्रामीण समाज नगर एवं उसकी जीवनधारा से आकृष्ठ होने लगा था। आर्थिक असन्तुलन के फलस्वरूप पारस्परिक - स्नेह विश्वास, त्याग, सेवा, प्रेम एवं कल्याण के भाव तिरोहित होने लगे और उसका प्रभाव बन्धुत्व माता - पुत्र, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, तक के अटूट सम्बन्धों पर पड़कर उनमें विघटन उत्पन्न करने लगे । संयुक्त परिवार के विघटन में आर्थिक तत्व कितना सहायक रहा, इसका स्पष्ट संकेत हमें प्रेमचन्द के उपन्यास " प्रेमाश्रम" में उपलब्ध होता है. - ज्ञानशंकर सोचता

है, जमींदारी की आय अधिकांश प्रभाशंकर के परिवार वालों पर व्यय होता है। असामियों पर लगाना आदि इजाफा, वसूली के लिए जोर -दबाव में डालें और चैन सारा का सारा घर करें। मुझे तीन साल पहले ही अलग हो जाना चाहिए था --

" ज्ञानशंकर दम्भ और द्वेष के आवेग में बहने लगे। एक नौकर चाचा का काम करता। तो दूसरे को खामखाह अपने किसी न किसी काम में उलझा रखते। इसी फेर में पड़ा रहता कि चाचा के आठ प्राणियों पर जितना व्यय होता है उतना मेरे तीन प्राणियों पर हो। भोजन करने जाते तो बहुत सा खाना जूठा करके छोड़ देते। इतने पर भी सन्तोष न हुआ तो दो कुत्ते पाले। उन्हे साथ बैठाकर खिलाते। यहाँ तक कि प्रभाशंकर डाक्टर के यहाँ से कोई दवा लाते तो आप भी उतने मूल्य की औषधि अवश्य लाते चाहे उसे फेंक ही क्यों न दें। इतने अन्याय पर भी चित्त को शान्ति न होती थी। चाहते थे कि महिलाओं में भी बमचक मचे। विद्या की शालीनता उन्हे नागवार मालूम होती, उसे समझाते कि तुम्हे अपने भले - बुरे की जरा भी परवा नही।[1]

संयुक्त परिवार जो हमारे सामाजिक जीवन की पावन स्थिरता, सुख -

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 24

समृद्धि और शान्ति का आधार रहा था, वह क्रमशः विघटित होने लगा। प्रेमचन्द साहित्य में हमें संयुक्त परिवार के विघटनकर्ता तत्वों को अत्यंत ही मनोयोग से अन्वेषण विश्लेषण प्राप्त होते हैं । आर्थिक असन्तुलन के साथ - साथ, परिवारिक सदस्यों के पारस्परिक - आचरण, व्यवहार वृत्ति, प्रवृत्ति, कार्य-कलाप हीनभावना के अतिरिक्त दाम्पत्य जीवन की कटुता, विशेषरूप से उत्तरदायी है। दाम्पत्य सुख के व्यवधान के दायक कारणों में - पति - पत्नी में प्रकृति एवं विचारों की विषमता, पारस्परिक उपेक्षा, पुरुष की विलासिता, एक दूसरे के प्रति अविश्वास की भावना, प्रमुख है - विचार - वैभिन्नय के परिणाम स्वरूप " कर्मभूमि " में अमर और सुखदा दोनो परस्पर पृथक होने तक की स्थिति में पहुँच जाते हैं। दोनो के स्वभाव एकदूसरे से पूर्णतः प्रतिकूल, रूचि तथा जीवनादेश असमान हैं । सुखदा जीवन को सर्वमूल्यवान वस्तु सुखभोग को मानती है अमर को इससे घृणा होती है । पत्नी जीवन की सहचरी न बनकर अमर के लिए पदे- पदे - व्यवधान उत्पन्न करनेवाली हो जाती है । पति-पत्नी दोनो में परस्पर सहयोग, सद्भाव और सहानुभूति न के समान है ---

> " दोनो आपस में हँसते - बोलते थे, साहित्य और इतिहास की चर्चा करते थे, लेकिन जीवन के गूढ़ व्यापारों में पृथक थी । दूध और पानी का मेल नहीं, रेत और पानी का मेल था, जो एक क्षण के लिए मिलकर पृथक हो जाता था ।[1]

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 22

ज्ञानशंकर की स्त्री विद्यावती भी इन, विचारों में पति से सहमत न थी । उसके विचार बहुत कुछ लाला प्रभाशंकर से मिलते थे । उसे परमार्थ पर स्वार्थ से अधिक श्रद्धा थी। उसे बाबू ज्ञानशंकर का अपने चाचा से वाद- विवाद करते देखकर खेद होता था और अवसर मिलने पर वह उन्हें समझाने की चेष्टा करती थी। पर ज्ञानशंकर उसे झिड़कें दिया करते थे । वह ऊंचे शिक्षित होकर भी स्त्री का आदर उससे अधिक न करते थे जितना अपने पैर के जूतों का । अतएव उनका दाम्पत्य जीवन भी, जो चित्त की शान्ति का एक प्रधान साधन है, सुखकर न था ।

सम्पत्तिवान व्यक्ति में प्राय: नैतिकता, सामाजिकता, शिष्टता आदि गुणों का ह्रास हो जाता है, उसमें व्यसनी, प्रवृत्तियों काउदय होता है व्यसनी वृत्ति से आक्रान्त व्यक्ति भोग लिप्सा की ओर अभिमुख हो जाता है । उसकी यह भोग लिप्सा उसे सामाजिक तथा धार्मिक विचारों की अवहेलना के लिए विवश कर देती है । परिणामत: दाम्पत्य जीवन कषायित होकर विघटन को प्राप्त होना अवश्यम्भावी हो उठता है । ऐसी स्थिति में पुरुष पत्नी की अवमानना करके दूसरा विवाह तक कर लेता है । प्रेमचन्द की " सौत" तथा अग्नि -समाधि" कहानियों में विलासी यह तथ्य उद्घाटित हुआ है । जीवन का शाप शान्ति और "वेश्या " कहानियां विलासी पुरुषों के चरित्र का अंकन करती हैं । उपन्यास "गोदान" का पात्र खन्ना भी एक विलासी पात्र है । खन्ना सम्पत्तिवान है इस कारण उसमें रसिक - प्रवृत्ति के कारण विलासिता का व्यसन

सहज ही आ जाता है । उसकी ऐसी प्रवृत्ति ने गोविन्दी की उपेक्षा करा देती है । खन्ना " गलती " के ही चक्कर में रात दिन पड़ जाता है । पति के इस आचरण से सुख सुविधा के समस्त उपकरणों के रहने पर भी उसकी पत्नी गोविन्दी निरन्तर अतृप्त एवं सन्तप्त रहती है। वह अपने गृहिणी के दायित्व का निर्वहन करना ही परम कर्तव्य मान भोग विलास पर ध्यान नही देता --

> " आकर्षण क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न हो जाता है । इसकी ओर से उसने कभी विचार नही किया। वह पुरूष का खिलौना नहीं है, न उसके भोग की वस्तु, फिर क्यों आकर्षक बनने की चेष्टा करें, अगर पुरूष उसका असली सौन्दर्य देखने के लिए आँखें नहीं रखता, कामिनियो के पीछे मारा- मारा फिरता है । तो वह उसका दुर्भाग्य है । ''[1]

प्रेमचन्द वस्तुत: सामाजिक कथाकार हैं । यही कारण है कि समाज के मूल आधार पारिवारिक जीवन का प्रत्येक शिव - अशिव पक्षोंका विश्लेषणात्मक चित्रण उनके उपन्यासों तथा कहानियों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है । इन चित्रणों में अधिकांशत: संयुक्त परिवार में दाम्पत्य जीवन की विविध समस्याओं की प्रस्तुति और उसके विघटन के कारणों पर विशदरूप से विवेचन तो है ही साथ ही कुछ अन्य समस्याओं यथा - परिवार - अनुषंगी आर्थिक समस्या और समाज की तत्कालीन विविध

---

1. गोदान / पृष्ठ 192 '

रीति परम्पराओं का परिवार से सम्बद्ध होने के अनुकूल प्रतिकूल प्रभाव-जनित रूपों का यथार्थ अंकन मिलता है। उल्लेख्य तथ्य है कि इस कारण ही प्रेमचन्द के प्रत्येक उपन्यास में पारिवारिक कथाओं का संयोजन अनिवार्यत: हुआ है। पारिवारिक कथाओं के चित्रण हम देखते हैं कि प्रेमचन्द ने पति - पत्नी, पिता- पुत्र, माता- पुत्र, सास- पतोहू भाई-भाई, भाई-बहिन, बहिन-बहिन, आदि के सम्बन्धों उनमें प्रगाढ़ता एवं कटुता के अतिरिक्त बड़े तथा वैभवशाली परिवारों में मातापिता द्वारा संतान के प्रति उपेक्षा भावों के भी अंकन किया है। लाला प्रभाशंकर अपने पुत्रों पर समुचित ध्यान नही देते परिणामत: दोनो ही पुत्र तेजशंकर और पद्मशंकर सैलानी बन जाते हैं ---

> दोनो लड़के घर से स्कूल को चलते हैं, लेकिन रास्ते में नदी के तट पर घूमते, बैंड सुनते या सेना की कवायद देखने की इच्छा उन्हे रोक लिया करती। किताबों से दोनो को अरूचि थी। और दोनो एक ही श्रेणी में कई - कई साल फेल हो जाने के कारण हताश हो गये थे उन्हे ऐसा मालूम होता था कि हमी विद्या आ ही नही सकती। एक बार लाला जी की आलमारी इन्द्रजाल की एक पुस्तक मिल गई। दोनो ने उसे बड़े चाव से पढ़ा और उसके मंत्रों को जगाने की चेष्टा करने लगे। दोनो अक्सर नदी की ओर चले जाते और साधु सन्तो की बातें सुनते सिद्धियों की नयी- नयी बाते सुनकर उनके मन में भी कोई सिद्धि प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है। इस कल्पना से उन्हे एक

गौरवयुक्त आनन्द मिलता था कि इन सिद्धियों के बल से हम सब कुछ कर सकते हैं, गड़ा हुआ धन निकाल सकते हैं, शत्रुओं पर विजय पा सकते हैं, पिशाचों को वश में कर सकते हैं ।(1)

प्रेमचन्द के उपन्यास वस्तुतः तत्कालीन सामाजिक अन्तः संघर्ष का यथार्थ अभिलेख प्रस्तुत करते हैं- इनमें समाज के सभी पक्ष अत्यन्त ही सूक्ष्म रूप से आकलित प्रतीत होते हैं। प्रेमचन्द में प्रत्येक वस्तु और उसके अनुषंगो का सम्यक निरीक्षण करने की अद्वितीय शक्ति थी । बालक की प्रकृति उसके प्रति अभिभावको द्वारा की जाने वाली उपेक्षा का परिणाम कितना विपरीत हो सकता है - प्रेमचन्द उल्लेख करते हैं —

" बाल्यकाल के पश्चात ऐसा समय आता है जब उद्दण्डता की धुन सिर पर सवार हो जाती है। इसमें युवाकाल की सुनिश्चित इच्छा नहीं होती, उसकी जगह एक विशाल आशावादिता है जो दुर्लभ को सरल और असाध्य को मुँह का कौर समझती है । भाँति भाँति की मृदु कल्पनाएं चित्त को आन्दोलित करती रहती है । सैलानीपन का भूत सा चढ़ा रहता है। कभी जी में आया है कि रेलगाड़ी में बैठकर देखूँ कि कहाँ तक जाती है। अर्थी को देखकर उसके साथ श्मशान तक जाते हैं कि वहाँ क्या होता है ? मदारी का खेल देखकर जी में

---

(1) प्रेमाश्रम / पृष्ठ - 223

> उत्कंठा होती है कि हम भी गले में झोला लटकाए देश विदेश घूमते और ऐसे ही तमाशे दिखाते । × × × विद्या के क्षेत्र में हम तिलक को पीछे हटा देते हैं, रणक्षेत्र में नेपोलियन से आगे बढ़ जाते हैं, । कभी जटाधारी योगी बनते है, कभी टाटा से भी धनवान हो जाते है । हमें इस अवस्था में फकीरों और साधुओं पर ऐसी श्रद्धा होती है जो उनकी विभूति को कामधेनु समझती है ।तेजशंकर और पद्मशंकर दोनो सैलानी थे । घर पर कोई देखभाल करने वाला न था जो उन्हें उत्तेजनाओं से दूर रखता । उनकी सजीविता को उनकी अबाध्य कल्पनाओं को सुविचार की ओर कर सकता ।[1]

प्रेमचन्द प्राचीन भारतीय मूल्यवत्ता एवं सांस्कृतिक निष्ठा के रचनाकार होने से अपनी रचनाधर्मिता को पुरातनी मर्यादाओं संस्कारों तथा वस्तु नैष्ठिकता, यथातथ्य नही तो तात्विक चित्रण से विचलित नहीं होने दिया। यही कारण है कि उनका रचनाकार- व्यक्ति नारी जागरण के काल में अवतरित होकर भी जीवन के विकास में परम्परागत भारतीय कल्पनाभूत मर्यादा सामा का उल्लंघन संगत न मान सका । उन्होंने नारी पुरुष के सम्बन्ध को पारस्परिक पूरक स्वरूप मान्यता प्रदान कर दाम्पत्य जीवन की सुखमय निर्मित का आधार स्वीकार करते रहे । होरी और धनिया

---

1. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 222-223

परस्पर पूरक चरित्र हैं। प्रेमचन्द एक चिन्तक साहित्यकार होने के परिणाम स्वरूप वह न तो अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों की रचनाधर्मिता को मानक स्वीकारा, न पूर्णतः अस्वीकार किया , न युगीन परम्पराओं का यथार्थरूप में अनुगमन किया और न उनके पवित्र तत्वों को विश्ले-षित कर शिव - अशिव पक्ष को प्रतिस्थापित करने से विचलित हुए, वस्तुतः वह सामाजिक मूल्यों की शुचिता के सर्वतोभावेन समर्थक रहे ---

प्रेमचन्द समाज की तरफ पाठकों का ध्यान आकृष्ठ करना चाहते थे । नारी समाज का उस काल का प्रतिबिम्ब उनके उपन्यासों में दिखायी देता है। परन्तु नारी मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म पर्त खोलने के लिए समय नहीं है । उनके बहुतांश उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन की विषमताओं के चित्र प्राप्त होते हैं। निर्मला उपन्यास की निर्मला अथवा सेवासदन की सुमन या शांता ऐसे नारी पात्र है जिनके मन में संघर्ष के तूफान रहे होंगे , अपने ही मन के विश्लेषण करने की चाह रही होगी अथवा गर्भवती, धुनिया को अपने घर में आश्रय देते समय धनिया के मन में असंख्य भावतरंगे उठी होंगी, जिनका चित्रण प्रेमचन्द कर सकते थे । परन्तु प्रेमचन्द नारी पात्रों, के मन की अतल गहराई में पहुँचना नहीं चाहते थे । उनको तो फ़िक्र है कि कैसे सुमन अथवा शान्ता को उनके पार्श्वभूमि पर उन्होंने किया है, पर नारी स्वभाव को समझकर उसकी सूक्ष्मता पर प्रकाश डालने के प्रयास का अभाव उनके उपन्यासों में दिखायी देता है । एक विशिष्ट समाज का चित्रण करते समय जितना और जैसा आवश्यक था प्रेमचन्द ने इतना ही

नारी चित्रण अपने उपन्यासों में किया है । नारी की व्यक्तिगत चेतना के विकास के चरण चिन्हों को दिशा देने का प्रयत्न उनके उपन्यासों का लक्ष्य ही नहीं है । यह निस्सन्देह कह सकते हैं कि प्रेमचन्द भारतीय विशिष्ट समाज के बारे में कुछ कहना चाहते हैं और उसमें उन्होंने बड़ी कुशलता - पूर्वक सफलता प्राप्त की है ।[1]

विवेकचनोपरान्त निष्कर्षतः हम कह सकते हैं ।- प्रेमचन्द का युग एक प्रकार से सामाजिक संक्रान्ति का काल था। पाश्चात्य प्रभावधिक्य के कारण - भारतीय समाज की निश्छलता, सार्वदेशिक - मूल्यवत्ता में पारस्परिक संघर्ष चल रहा था। जीवन के पुरातन मूल्यों, सांस्कृतिक प्रतिमानों को क्षीयमान धर्म से वंचित रखने के लिए परिष्करण की आवश्यकता पर प्रेमचन्द का रचनाकार व्यक्ति केन्द्रित होने की राह खोजना चाहता है, ऐसी उनके उपन्यासों के कथापात्रों के चारित्रिक - अंकन से परिलक्षित होता है ।

---

1. प्रेमचन्द : एक सिंहावलोकन / पृष्ठ 157
   : प्रो० ह० श्री साने ।

xxxxxx xxxxxx
xxxx xxxx
xx xx

अध्याय - 4

राजनीतिक-सन्दर्भ

साहित्यकार समाज का व्यक्ति है, उसकी रचना धार्मिकता उसे विशेष पहिचान प्रदान करती है । कोई भी रचना साहित्य है, यह मान लेना भूल है, क्यों कि रचना एक वह है जो सायास, साग्रह की जाती अथवा करनी पड़ती है, एक वह है जो अन्त प्रेरणा से उद्वेलित विचार विषय या घटना विशेष पर जन्म लेकर एकत्र हो उठते हैं, एक रचना का सुष्ठु स्वरूप धारण कर बैठते हैं । पहली रचना को साहित्य की कोटि में परिगणित किया जायगा और दूसरी को साहित्य से संज्ञित किया जायगा । ऐसी रचना में मनुष्य की वृत्ति-प्रवृत्ति क्रिया कलाप, उसके परिवेश, तज्जनित घटनाएँ, उनके आवर्तन-विवर्तन सब कुछ अन्तर्प्रविष्ट हो जाते हैं । इसी लिए कहा जाता है- प्रेमचन्द्र की दृष्टि से साहित्य, समाज और राजनीति का अटूट सम्बन्ध है । उन्होंने साहित्य की समाज - सापेक्षता पर जोर दिया है । साहित्य को कल्पना-क्षेत्र में खींचकर जीवन के क्षेत्र मेंलबाते समय प्रेमचन्द्र यह ध्यान रखते हैं कि वह जीवन की सीमाओं को इतना न घिर जाय कि वर्तमान में फंसकर विकास की सम्भावनाओं को भूल जाय । वे साहित्य को जीवन के निकट लाना चाहते हैं । साहित्य, समाज विकास के उद्देश्य से जीवन की आलोचना करता है । वे सामाजिक -जीवन को सुन्दर बनाने के लिए सामंजस्य पर बल देते है । साहित्य के सम्बन्ध में उनकी यह निश्चित धारणा है - मगर हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं मानते । प्रेमचन्द्र -साहित्य को समाज के निर्माण तथा विकास के

लिए उपयोगी मानते हैं और इस विकास के काम में लगी हुई देशभक्ति और राजनीति को साहित्य के अनुयायियों का स्थान देते हैं । एक स्थान पर उन्होंने लिखा है- साहित्य, राजनीति के पीछे चलने वाली चीज नहीं उसके आगे-आगे चलने वाली एडवांस गार्ड है । यह उस विद्रोह का नाम है जो मनुष्य के हृदय में अन्याय, अनीति और कुरुचि से उत्पन्न होता है । कुछ विचार[1] यह आवश्यक है कि साहित्यकार राजनीति, समाज शास्त्र, मनोविज्ञान आदि से परिचित हो । साहित्य में सामाजिक दृष्टिकोण के आग्रह के साथ साहित्यकार की जिम्मेदारियां अधिक बढ़ती हैं । प्रेमचन्द्र इसे अच्छी तरह जानते हैं । स्पष्ट है प्रेमचन्द्र का साहित्य का साहित्य राजनीतिक द्वन्द्व , तज्जनित परिवेश, घटनाक्रमों, तत्प्रेरित सामाजिक- संघर्षों से शून्य कथमपि नहीं कहा जा सकता । प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन अन्प्रेविष्ट रूप से वर्णित है । उदाहरण के लिए - अछूतों का मन्दिर -प्रवेश आन्दोलन , यह सामाजिक और राजनीतिक दोनों मानना पड़ेगा । कर्मभूमि में पुलिस जब मन्दिर के मालिक द्वारा बुलायी जाने पर गोलियां चलायेगी तो वह आंदोलन राजनीतिक तो हो ही जायगा । अछूतोद्वार का आन्दोलन सामाजिक तथा राजनितिक दोनों ही है । अर्थ यह कि प्रेमचन्द्र ने समाज और राजनीति दोनों को यथावसर अपने उपन्यासों में अभिनिवेश दिया है ।

---

1. चिट्ठी -पत्री (भाग ।) अमृतराय । पृष्ठ- 93 .

प्रेमचन्द्र एक प्रबुद्ध साहित्यकार ही नहीं चिन्तक भी थे, वह तीव्र दूरदृष्टि के विचारक रहे । घटना क्रमों को पूर्वापर परिस्थितियों के आधार पर उसके भविष्यगामी परिणाम की परिकल्पना कर लेते रहे । उनकी यह तीक्ष्ण दृष्टि राजनीतिक-क्षितिज के भी कोनों में घुसने से विराम न लेती थी । फिर वह उनका युग ही राष्ट्रीय आन्दोलन का था । सन् 1919 में माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड की सुधार योजना आयी । यह अंग्रेज - शासन की शुद्ध कूटनीति रही। सरकार ने लिबरल नेताओं को पक्षधर बनाने का सफल प्रयास किया । परिणामतः लिबरल नेताओं ने उस योजना का सहर्ष स्वागत किया जबकि योजना के अंतर्गत विभिन्न जातियों तथा सम्प्रदायों को पृथक निर्वाचन तथा संरक्षण प्रदान करने की बात कही गयी थी । किसी प्रकार के नये अधिकार भारतीयों को देने की बात नहीं थी । प्रेमचन्द्र ने इस सुधार- योजना के लक्ष्य एवं परिणाम को भली-भाँति समझने में कोर- कसर न छोड़ी । उन्होंने एक पत्र में दयानारायण निगम को लिखा- मेरे ख्याल में मोतदिल पार्टी इस वक्त जरूरत से ज्यादा मगरूर और नाजाँ है हालाँकि इसलाहों में अगर कोई खूबी है, तो सिर्फ यह कि तालीमयाफ्ता जमाअत को कुछ आसानियाँ ज्यादा मिल जायेंगी और जिस तरह यह जमाअत वकील बनकर रिआया का खून पी रही है, उसी तरह आइन्दा यह हाकिम होकर रिआया का गला काटेगी ।[1] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द्र का रचना संसार सामाजिक परिप्रेक्ष्य - जनित घटनाक्रमों और उनके

---

1. चिट्ठी-पत्री (भाग-1) अमृतराय /पृष्ठ 93 .

उत्थान-पतन संबंधी विचारों से सम्पृक्त रहा है । प्रेमचन्द्र महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के पूर्ण समर्थक थे । वह गाँधी जी के न केवल सामाजिक वरन् उन सारे विचारों के परिपोषक थे जो समाजसापेक्ष एवं राष्ट्रीय गौरव के बोधक, अभिवर्द्धक रहे । भले ही उन विचारों की आधारभूमि राजनीतिक सोच ही क्यों न रही हो । स्पष्ट है प्रेमचन्द्र भले ही राजनीति में पूर्णतः सक्रिय न रहे हो किन्तु वह उससे सर्वथा दूर अथवा अस्पष्ट नहीं कहे जा सकते । सन् 1918 में जब तिलक पर एक नयी पाबंदी लगा दी गयी कि वह कलक्टर की बिना अनुमति पलटन में भर्ती होने का समर्थन करने के लिए कोई भाषण नहीं दे सकते । तिलक गाँधी जी की रवैया से भी कदाचित् असन्तुष्ट रहे । दूसरी ओर सरकार तिलक तथा उनके समर्थकों को दबाकर रखने में अपने साम्राज्य का कल्याण समझ रही थी। यही समय था जब रोलट एक्ट प्रभाव में आया । उस परिवेश को, उस समय के बनते- बदलते चित्र सामाजिक और भारतीय नेताओं की मानसिकता, उनके व्यवहार सब कुछ का पूर्ण सावधानी से निरीक्षण करते रहे - " मुंशी जी व्याव-हारिक राजनीति के क्षेत्र से बिलकुल अलग अपने एक कोने में बैठे हुए खामोशी से काम कर रहे थे, लेकिन आँख- कान खूब - खूब खुले हुए, देश- विदेश की हर बड़ी घटना के प्रति असाधारण रूप से सजग । उनके जैसे अलग-थलग एक व्यक्ति के आचरण का समाज पर तत्काल प्रभाव पड़ता हो या न पड़ता हो, उनकी दृष्टि में यह बात अपने आप में महत्व रखती थी कि व्यक्ति जिसको सत्य और न्याय समझता है, उसके लिए अपनी आवाज उठाता है भले वह आवाज कितनी ही अकेली हो, कितनी ही कमजोर हो । महत्व इस बात का नहीं है कि उस आवाज

में दम था या नहीं और दुनिया उससे हिली या नहीं हिली । महत्व इस बात का है कि एक आदमी ने, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, सबको सच और झूठ, न्याय को न्याय और अन्याय को अन्याय कहा ।[1]

प्रेमचन्द्र का युग "राष्ट्रीय आन्दोलन का युग था । एक ऐसा आन्दोलन जिसके ओजस्वी स्वर को अनुगुंज भारत- धरती के कण - कण से सुनी जा सकती थी । देश का लगभग हर व्यक्ति इस आन्दोलन को प्रभावक बनाने के लिए किसी न किसी रूप में प्रयत्नशील रहा - कोई कर्म से , कोई धर्म से कोई अर्थ से, कोई बल से । कोई भावात्मक रूप से , कोई मानसिक रूप से तो कोई विचारात्मक टिप्पणियों द्वारा आन्दोलन गतिशीलता प्रदान करता रहा । "मुंशी जी इतिहास के विद्यार्थी थे, समाजशास्त्र के विधार्थी थे, राजनीति की अच्छी सूझ-बूझ रखने वाले व्यक्ति थे, मन की एक - एक वृत्ति से इस क्रान्ति-समर में रमें हुए थे ।[2] आन्दोलन के प्रति उनको ममता थी, असाधारण ममता थी, लेकिन बिलकुल निःस्वार्थ क्यों कि एक निस्संगता भी उसके साथ लगी हुई थी । वह सच्चे निष्कपट भाव से समर्पित हैं देश का स्वाधीनता के संग्राम को लेकिन तो भी अलग-थलग हैं उस चीज से जिसे सक्रिय राजनीति कहा जाता है । शायद इसीलिए वह हर चीज को औरों से अधिक निरपेक्ष होकर ज्यादा साफ और सीधे ढंग से सोच पाते हैं, देख पाते हैं । जहाँ दूसरे बहुत से लोग ज्वार के साथ केवल बढ़े

---

1. कलम का सिपाही: अमृतराज/पृष्ठ- 266 .
2. वही / पृष्ठ 277-78 .

जा रहे हैं इतने बेसुध होकर कि उन्हें एक झटका - सा लगा जब गाँधी जी ने आन्दोलन को रोक दिया, वहाँ मुंशी जी आँख- कान खोलकर चल रहे हैं अगल-बगल, दायें- बायें देखकर चल रहे हैं बीच-बीच में शायद पूछ भी लेते हैं, मुझसे तुमसे थक तो नहीं रहे हो, बड़ी दूर जाना है, कुछ कमजोरी तो नहीं लग रही है, अपने भीतर ।[1]

"कलम का सिपाही" कृति का लेखक अपने इस कथन से स्पष्ट संकेत देता है कि प्रेमचन्द्र केवल राजनीतिक - कार्यकलाप को अपनी सहभागिता नहीं प्रदान कर पाये यह अलग बात है परन्तु वह राजनीतिक विचारधारा में मानसिक रूप से अन्तर्प्रविष्ट अवश्य रहे । उनकी मानसिकता, राजनीतिक सोच की वैयक्तिकता निष्कपटता और भारतीय "स्व" की धार्मिता का स्वरूप कितना सहज होकर मुखर हुआ है -

" कोई जाने या न जाने मुंशी जी खूब जानते हैं कि मात्र राजनीतिक एकता से और वह भी चोटी के कुछ नेताओं की, ज्यादा कुछ होना- जाना नहीं । फसाद की जड़े बहुत गहरी हैं और उनके अनेक नाम है, रूप हैं, स्तर है। इतिहास का बहुत - सा कूड़ा-करकट है । वर्तमान सामाजिक जीवन के बहुत से झाड़-झंखाड़ को साफ करना होगा । यह एक लम्बा संघर्ष होगा, कठिन संघर्ष होग । केवल एकता का नाम अपने से एकतानहीं होगी । उस जहर को तो मारो जो दोनों के दिलों में रिस रहा है ।[2] वह कहते है— हिन्दुओं में इस

---

1. कलम का सिपाही : अमृतराय /पृष्ठ 266 .

2. वही/पृष्ठ 277-78 .

इस वक्त गम्भीर नेताओं का अकाल है । हमारा नेता वह होना चाहिए जो गम्भीरता से समस्याओं पर विचार करें । मगर होता यह है कि उसकी जगह शोर मचाने वालों के हिस्से में आ जाती है कि अपनी जोरदार आवाज से जनता की छिपी हुई भावनाओं को उभाड़कर उन पर अपना अधिकार जमा लिया करते हैं । वह कौम को दरगुजर करना नहीं सिखता, लड़ना सिखाता है । उसका फायदा इसी में है । इस आन्दोलन को शुरू करने वाले और कार्यकर्ता वही लोग हैं जो राजनीतिक मामलों में हिस्सा लेने से कावा काटते रहते हैं या उसमें हिस्सा लेते भी हैं तो आबरू बचाये हुए ।[1]

प्रेमचन्द्र जी चाहते है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में सहभागिता करने वाले पूर्ण मानसिकता से सम्मलित हों । साथ ही यह भी अनिवार्य है कि जाति-धर्म का भेदभाव भुलाकर आयें, गम्भीर होकर आयें, हृदय से आये, दिखावे के लिए नही बल्कि , व्यावहारिक रूप से सक्रिय हों । वह हिन्दू मुसलमान दोनों के लिए साम्प्रदायिकता शब्द को भूलना सर्वाधिक सार्थक मानते थे ।

असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखे "संग्राम " नाटक का एक सन्दर्भ - सबल सिंह "डिमोक्रेसी" नामक कोई ग्रन्थ पढ़ रहे हैं, जिसमें यह बात लिखी है- हम अभी जन सत्तात्मक राज्य के योग्य नहीं हैं, कदापि नहीं हैं । अमरीका, फ्रांस, दक्षिणी अमरीका आदि देशों ने बड़े समारोह से इसकी व्यवस्था की पर उनमें से किसी को भी सफलता नहीं हुई : वहाँ अब भी धन और सम्पात्तिवालों के ही हाथों में अधिकार है । प्रजा अपने प्रतिनिधि कितने ही

---

1. कलम का सिपाही / पृष्ठ 277 .

सावधानी से क्यों न चुने पर अन्त में सत्ता गिने- गिनाये आदमियों के ही हाथों में चली जाती है । सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था ही ऐसी दूषित है कि जनता का अधिकांश मुट्ठी भर आदमियों के वशवर्ती हो गया है । जनता इतनी निर्बल, इतनी अशक्त है कि इन शक्तिशाली पुरुषों के सामने सिर नहीं उठा सकती । xxx आदर्श व्यवस्था यह है कि सबके अधिकार बराबर हो, कोई जमींदार , कोई महाजन बनकर जनता पर रोब न जमा सके । यह ऊँच- नीच का घृणित भेद उठ जाय ।"[2]

सच यह है कि प्रेमचन्द्र भारतीयता के, राष्ट्रीयता के और कुल मिलाकर स्वाधीनता आन्दोलन के समर्थक थे । स्वाधीनता का आन्दोलन प्रकारान्तर से पूर्णतः राजनीतिक हो चुका था । प्रेमचन्द्र इस आन्दोलन के न तो सक्रिय कार्य- कर्ता रहे तथा न किसी पार्टी विशेष से वह सम्बन्धित ही थे । वह ऐसी स्थिति थी जब देश का हर स्वर स्वातंत्र्य आन्दोलन से मुखर होकर ही उठ रहा था । प्रेमचन्द्र भी उससे अपनी चिन्तन धारा को वंचित नही रख सके । सबल सिंह, सम्बन्धी "संग्राम नाटक का संदर्भ हमें यह कहने के लिए खुली छूट देता है कि प्रेमचन्द्र युगबोध के सुधी और सजग पारखी होने के कारण उनका आभास अपने उपन्यासों में सायास अथवा अनायास दिये है - यही तो है साहित्यकार के दायित्व की कसौटी जिसका निर्वहन बखूबी किया । रंगभूमि प्रेमचन्द्र को एक

---

2. वही / पृष्ठ 318 .

सफलतम कृति है, जीवन उपलब्धि का महाकाव्य है । उसमें का सूरदास में प्रेमचन्द्र का व्यक्ति ही समाविष्ट है । वह एक आदर्श सत्याग्रही है लेकिन राजनीतिक आन्दोलन के एक सीमित अर्थ में नहीं, जीवन की एक समग्र दृष्टि के व्यापक अभिप्राय - सहित । और किसी के लिए होन प्रेमचन्द्र के लिए सत्याग्रह का अभिप्राय यही है, जीवन के कुछ सनातन मूल्य-दया , क्षमा , परोपकार, प्रेम, विनय, अपरिग्रह, निर्भय- सत्यनिष्ठा, अन्याय का प्रतिकार- जिनकी श्रृंखला उनकी अपनी प्रवृत्ति और संस्कार में शुरू होती है और टालस्टाय को अपने साथ जोड़ती हुई गाँधी तक आती हैं ।[1]

"रंगभूमि " को प्रकारान्तर से यदि राजनीतिक विचारधारा से ओत प्रोत एक सफल उपन्यास है ।। इसका पात्र "सूरदास" उपन्यासकार के व्यक्ति प्रेमचन्द्र की प्रतिमूर्ति है । उसमें प्रेमचन्द्र की नैतिकता, राष्ट्रीयता , समाजिकाता और भारतीय संस्कृति विषयक चिन्तनधारा की अविरल प्रवाह में क्षण- प्रतिक्षण डुबकियाँ लगाते चिरन्तन रूप उच्छरित से होते प्रतीत होते हैं । प्रेमचन्द्र जी गाँधीवादी चिन्तनधारा के पूर्णरूप से समर्थक थे, गाँधी जी उस समय प्रकारान्तर से भारतीय राजनीति- आकाश के प्रखर - तेज दिवाकर रूप थे । उनके विचारों का अंकन करने वाला कोई भी उपन्यास राजनीतिक, उपन्यास की कोटि में रखा जाना असंगत नहीं कहा जा सकता । उपन्यास रंगभूमि में "सूरदास" के व्यक्ति गाँधी को प्रतिष्ठित करता परिलक्षित होता है । कुँवर

---

1. कलम का सिपाही/ पृष्ठ 327 .

"सूरदास" के रूप में गाँधी जी की उद्भावना सिद्ध है । बाप- बेटे कुँवर भरत सिंह और विनय के रूप में मोतीलाल और जवाहर लाल नेहरू का संकेत बराबर मिलता है । ऐसा ही एक संकेत और भी है । विनय सेवादल के एक जत्थे के साथ राजस्थान जाता है । देशी रियासतों की जैसी हालत थी, वहाँ जनता के बीच किसी तरह का कोई काम करना राजद्रोह से कम नहीं समझा जाता था। और नतीजा होता है कि विनय पकड़कर जेल में डाल दिया जाता है । यही चीज जवाहर लाल के साथ इन्हीं दिनों हुई- जबकि वह पंजाब की एक रियासत नाभा में गये और जहाँ एक अर्से से खानदानी झगड़ा चला आ रहा था तथा उस झगड़े का बहाना बनाकर सरकार ने नाभा रियासत को अपने कब्जे में ले लिया और रियासत का प्रबन्ध करने के लिए एक अंग्रेज हाकिम को वहाँ भेज दिया । नाभा के लोग अपने महाराजा को गद्दी से उतारे जाने पर यों ही क्षुब्ध थे, जब उस अंग्रेज हाकिम ने जैतो नामक स्थान पर सिक्खों के एक धार्मिक उत्सव पर रोक लगा दी तो सिक्खों का आन्दोलन शुरू हो गया, और अकालियों के जत्थे पर जत्थे पहुँचने लगे । जवाहर लाल को स्थिति का अध्ययन करने के लिए कांग्रेस की ओर से वहाँ भेजा गया , और वह पहुँचते ही गिरफ्तारकर लिये गये ।[2] उपन्यास के पात्र विनय तथा जवाहर लाल दोनों के व्यक्ति को समान धरातल पर सहज ही प्रतिष्ठित किया जा सकता है । क्या यह राजनीतिक - भावभूमि को निर्मित नहीं है । अस्तु ।

---

2. वही /पृष्ठ 342-343 .

मुंशी जी की राजनीति लोकाश्रयी है - जनता के दुःख- दर्द, जनता की संवेदनाओं और जनता के संघर्ष की राजनीति, स्वाधीनता - प्रेमियों के सबसे उदारमनस्क प्रबुद्धवर्ग की राजनीति जो इस बात को समझता है कि उसकी शक्ति का स्रोत साधारण जनता में ही है । जो उसके जितना ही पास है, उसके पाँव उतने ही मजबूत है और जो जितना ही दूर है उसके पाँव उतने ही कमजोर हैं । यह बात भी आकस्मिक नहीं है कि मुख्य कथा सूरदास को लेकर है और वह अन्धा ही उसका नायक है । दूसरे सब उसका अनुगमन करने वाले हैं । "राजनीति का मतलब मुंशी जी के लिए आत्म - बलिदान है और सही या गलत पढ़े- लिखे सफेद पोश लोगों की आत्म- बलिदान की क्षमता के बारे में उसका सन्देह बहुत पुराना है xxxx सूरदास उनकी इसी आस्था और विनय इसी अनास्था का प्रतीक है । सूरदास मजबूती के साथ अन्त तक मैदान में टिका रहता है और फिर वहीं खेत रहता है । कहीं उसके पैर नहीं डगमगाते । विनय के पैरों को डगमगाने के लिए बस बहाना चाहिए । राजस्थान में रियासत के बागी सोफिया को उड़ा ले जाते है" । विनय के सारे सिद्धान्त , सारे आदर्श हवा हो जाते हैं और वह बहककर शासक वर्ग से मिल जाता है और जनता के दमन में, इतने मनोयोग से पुलिस का हाथ बँटाने लगता है कि उससे भी दो बाँस आगे निकल जाता है । × × × सोफिया तक को उसे घृणा करने लगता है और शहर के लोग तो जैसे उसकी खिल्ली उड़ाते ही है । उस दिन यह एक संयोग ही था कि वह घटनास्थल पर जा पहुँचता

है । आस - पास कुछ लोग उस पर बोली- आवाजे कसते हैं जिससे उसको इतनी ग्लानि होती है कि वह आवेश में आकर अपने को गोली मार लेता है । मौत उसकी कायरता पर पर्दा ही डालती, एक हद तक उसे धो भी देता है । लेकिन एक हद तक ही ।[1]

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में संचालित आन्दोलन , जन- आन्दोलन के रूप में परिवर्तित हो चुका था । पंजाब की दुर्घटनाओं का जाँच के लिए सरकार ने एक कमीशन की नियुक्ति कर दी । वह हंटर कमीशन कहा गया । इस कमीशन की आख्या- व्याख्या 28 मई 1920 को प्रस्तुत हुई गाँधी जी ने उस हंटर कमीशन की रिपोर्ट को पक्षपातपूर्ण करार दिया और उन्होंने उसके विरोध में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने का विनिश्चय किया । काँग्रेस के विशेष सितम्बर 1920 के काँग्रेस विशेष अधिवेशन में देशबन्धु दास ने गाँधी जी के निर्णय को असंगतकहते हुए उसको विरोध भी किया । उनके विरोध करने पर भी गाँधी का प्रस्तावित असहयोग आन्दोलन स्वीकृत कर लिया गया । विदेशी सामान, स्कूल, कालेजों, अदालतों बार कौन्सिलों के बहिष्कार का विनिश्चय हुआ । सरकारी नौकरियाँ, सरकारी उपाधियों का परित्याग कर देने का प्रस्ताव रखा गया । दिसम्बर 1920 के नागपुर अधिवेशन ने भी गाँधी जी के असहयोगआन्दोलन और सरकारी वस्तुओं के बहिष्कार का विनिश्चयात्मक प्रस्ताव पर मुहरलगा दी है । गाँधी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित इस असहयोग आन्दोलन ने देश की कल्पना शक्ति

---

1. कलम की सिपाही /पृष्ठ 344 .

को आन्दोलित कर दिया और आशा की किरण का आकर्षण संचरण का समावेश हुआ । समग्र देश आशान्वित हो उठा था । परिणामतः आन्दोलन - काल में विद्यार्थियों ने स्कूल कालेज छोड़ दिये, कौंसिल के सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिये, वकीलों ने वकालत छोड़ दी, सरकारी नौकरियाँ तथा उपाधियाँ त्याग दी गयी । विदेशी वस्त्रों का विशेष रूप से बहिष्कार हुआ और खादी राष्ट्रीयता की प्रतीक बन गयी । पूरा देश एक संगठित शक्ति के रूप में कार्य कर रहा था । यद्यपि प्रत्येक वर्ग के स्वार्थ भिन्न - भिन्न थे । इसी असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर फरवरी 1921 में 20 वर्ष की सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया ।[1]

उल्लेखय है कि प्रेमचन्द्र सक्रिय राजनीति में कभी भी नहीं रहे । वह राष्ट्र धर्म के पोषक, संरक्षक उसके अस्तित्व के प्रतिस्थापक थे । उसकी प्रतिष्ठा - धर्म के लिए सतत कर्म- तत्परता ही उनकी राजनीतिक सोच रही । गाँधी जी के आदर्शों का अनुसरण उनकी राजनीतिक सक्रियता कही जा सकती है । 5 अप्रैल 1030 को गाँधी जी की सक्रियता डण्डी यात्रा सम्पन्न हुई । उसके द्वारा गाँधी जी ने ब्रिटिश सरकार के नमक कानून भंग किया । प्रेमचन्द्र जी उनके इस आदर्श के पूर्ण समर्थक थे । गाँधी जी प्रेरणा ने भारतवासियों में एक आश्चर्यजनक स्फूर्ति का संचार कर दिया । स्थान - स्थान पर नमक बनाकर नमक- कानून तोड़ा गया । इस समय प्रेमचन्द्र जी अमीरुद्दौला पार्क लखनऊ में

---

1. चिट्ठी - पत्री (भाग 1) पृष्ठ 111 .

रहा करते थे। उनके निवास के ही सामने काँग्रेस का कार्यालय था। अमीनुद्दौला पार्क में स्वयं सेवक नमक बनाते थे और विदेशी वस्त्रों की होली जलाते थे। प्रेमचन्द्र ने स्वयं अपने हाथों से कुछ स्वयं सेवकों को खद्दर का कुर्ता और टोपी पहनाकर नमक बनाने के लिए भेजा।[3] इस आन्दोलन ने स्त्रियों के मानसिक स्तर में भी परिवर्तन ला दिया। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार आदि के कार्यक्रम में भाग लेना शुरू कर दिया। शिवरानी देवी जो अपने किसान, अक्खड़, दबंग स्वभाव के कारण इसी बीच अपनी स्वयं सेविकाओं में काफी लोकप्रिय हो चुकी थी, अपनी टोली की कप्तान बनायी गयी। नवम्बर को 9 तारीख को वह पिकेटिंग करते हुए पकड़ ली गयी। 11 नवम्बर में अपने पत्र में प्रेमचन्द्र ने राजेश्वर वम्बू को इसको खबर देते हुए लिखा -"तुम्हारी मौसी 9 तारीख को विदेशी कपड़े की दूकान पर पिकेटिंग करते हुए पकड़ ली गयी। मैं कल उनसे जेल में मिला और हमेशा की तरह प्रसन्न पाया। उन्होंने हम लोगों को पछाड़ दिया और मैं अब अपनी आँखों में छोटा लग रहा हूँ। उनकी इज्जत मेरी आँखों में सौ गुना बढ़ गयी। लेकिन अब जब तक कि वह आकार मुझे मुक्त नहीं कर देती, मुझे गृहस्थी का बोझ उठाना पड़ेगा।[3]

प्रेमचन्द्र का साहित्य सत्यतः राजनीति, राजनीतिक, सोच एवं तत्कालीन राजनीतिक संघर्ष अथवा उभरती समस्याओं से अछूता है, परन्तु जहाँ तक साहित्य

---

2. कलम का सिपाही- अमृतराय/पृष्ठ 458.

3. वही / पृष्ठ 463

में लेखक के भोगे हुए सत्य युग - बोध का प्रश्न है उनके उपन्यासों में राजनीतिक वातावरण का स्पष्टतः चित्रण देखने को मिलता है । वातावरण घटनाओं का विम्बन- परिप्रेक्ष्य और पात्रों के चरित्र में राजनीतिक सोच अथवा राजनीतिक नेताओं के स्वभाव का आरोपण यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि प्रेमचन्द्र का भावात्मक झुकाव राजनीति की ओर अवश्य रहा । हाँ वह किसी पार्टी में कभी न रहे । जैसा कि उन्होंने मुंशी दयानारायण निगम को एक प्रश्नोत्तर में लिखा था - मैं किसी भी पार्टी में नहीं हूँ । इसीलिए कि दोनों में से कोई पार्टी कुछ अमली काम नहीं कर रही है । मैं तो उस आनेवाली पार्टी का मेम्बर हूँ जो कोतहुन्नास की सियासी तालीम को अपना दस्तूर - उल - अमल बनाये । स्वराज्य खिलाफत पार्टी की जानिब से जो कांस्टीच्यूशन निकला है उससे अलबत्ता मुझे कुल्ली इत्तफाक है । मगर ताज्जुब मैं ही है कि यह एक पार्टी से क्यों निकला। मेरे खयाल में दोनों ही पार्टियाँ इस मुआमले में मुत्तफिक हैं ।[1]

जैसा कि पूर्व अनुच्छेदों में कहा गया है कि राजनीति का मतलब मुंशी जी के लिए आत्मबलिदान है । अपनी इस विचार धारा को अपने उपन्यासों में कथा क्रमाबद्ध घटनाक्रमों में परिप्रेक्ष्य में अपने पात्रों के माध्यम से स्पष्ट किया है । प्रेमचन्द्र जी कभी भी सक्रिय राजनीति से भले न जुड़े रहे हों किन्तु उनकी विचार धारा तत्कालीन परिस्थिति द्वारा अवश्य सक्रिय रहे । रंगभूमि का पात्र सूरदास

---

1. कलम का सिपाही / पृष्ठ 324 .

उनकी इसी आस्था और विनय इसी अनास्था का प्रतीक है । सूरदास मजबूती के साथ अन्त तक मैदान में डटा रहता है और फिर वहीं खेत रहता है । कहीं उसके पैर नहीं डगमगाते । विनय में पैरों को डगमगाने के लिए बस बहाना चाहिए । राजस्थान में रियासत के बागी सोफिया को उड़ा ले जाते हैं । विनय के सारे सिद्धान्त, सारे आदर्श हवा हो जाते हैं और वह बहककर शासकवर्ग से मिल जाता है और जनता के दमन में इतने मनोयोगसे पुलिस का हाथ बँटाने लगता है कि उनसे भी दो बाँस आगे निकल जाता है । पांडेपुर की लड़ाई जिस समय चल रही है उस समय वह शुद्ध कायरतावश अपने घर में दुबका बैठा रहता है। सोफिया तक को उसका यह चलन अखर लगता है और शहर के लोग तो जैसे उसकी खिल्ली उड़ाते हैं । उस दिन यह एक संयोग ही था कि वह घटनास्थल पर जा पहुँचता है । आस-पास कुछ लोग उस पर बोली-आवाजा कसते हैं जिससे उसको इतनी आत्मग्लानि होती है । कि वह आवेश में आकर अपने को गोली मार लेता है । मौत उसकी कायरता पर परदा ही नहीं डालती एक हद तक उसको धो भी देती है लेकिन एक हद तक ही ।[2] इसवर्णन से प्रेमचन्द्र ने राजनीति के जिन सिद्धान्त को सूरदास एवं विनय में आरोपित करने का सफल प्रयास किया है । एक आत्म - बलिदान के प्रति पूरी आस्था है और दूसरे में उसके प्रति अनास्था के भाव ।

---

2. वही / पृष्ठ - 344 .

प्रेमचन्द्र जी गांधी जी की चिन्तनधारा , उनके दृष्टिकोण की सिद्धान्तः एवं व्यवहारतः दोनों ही रूपों में समर्थक और पारपोषक हैं । अन्य लोग उनके कार्यकलापों का अनुसरण करते हैं स्वातंत्र्य- आन्दोलन के संचेतक सत्याग्रह- आंदोलन का अगुवा एक पुरोध स्वीकार करके ठीक उस प्रकार जैसे मार्गदर्शक के पीछे-पीछे यात्री चुपचाप चला करता है किन्तु प्रेमचन्द्र पीछे चलने वाले यात्री नहीं, बरन् एक सुदृढ़ समर्थक है । उनकी दृष्टि में सत्याग्रह तथा सत्याग्रही का रूप कुछ और है - सत्याग्रही का अर्थ एक निर्भीक सिपाही उदान्त, उच्च भावनाओं वाला मनुष्य । यह सब रंगभूमि" उपन्यास के नायक "सूरदास" में उन्होंने आरोपित कर दिया है -" सूरदास के पास अपने बाप-दादों के वक्त की कुछ जमीन है जिसे उसने अपने गांव के मवेशियों के चरने के लिए छोड़ दिया है । मिस्टर जॉन सेवक को अपना सिगरेट का कारखाना खोलने के लिए जमीन चाहिए और उनके दांत सूरदास की जमीन पर लगे है । बड़े- बड़े लोग धनी- मानी लोग सूरदास को समझाने के लिए आते हैं, लालच देते हैं, डराते - धमकाते है , लेकिन सूरदास किसी तरह अपनी जमीन देने पर राजी नहीं होता । फिर वह जमीन बड़े-बड़े हतकंडों से जबरिया हासिल की जाती है । सिगरेट का कारखाना खड़ा हो जाता है । फिर उन लोगों के घरों पर बात आती है क्यों कि कारखाने के मजदूरों को रहने के लिए जमीन चाहिए । सारी कहानी इसी भूमि के संघर्ष को लेकर है । संघर्ष जो वास्तविक भूमि के टुकड़े को लेकर भी और प्रतीक भी है एक बृहत्तर संघर्ष का । इसी संघर्ष में गंव की छोटी - सी राजनीतिक की सजीव पृष्ठभूमि

में सूरदास एक अटल सत्याग्रही के रूप में सामने आता है । सत्याग्रही मानी एक निडर सिपाही और उच्चतर मानव ।[1] जैसा कि "कलम का सिपाही" का लेखक रंगभूमि की समस्त कथा का सारांश रूप कहता है -"इसके माध्यम से, इसकी अन्योक्ति से जन- आन्दोलन की उस राजनीति को प्रस्तुत किया गया है जिसका सूत्रधार गांधी हैं ।[2]

प्रेमचन्द्र जी कलम के सिपाही रहे, न स्वातंत्र्य - संग्राम के योद्धा, न असहयोग आन्दोलन के नेता और ना तो सत्याग्रही किन्तु उनके कथा साहित्य के अधिकांश पात्र स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा असहयोग - आन्दोलन के नेता एवं सत्याग्रही है ।इस सम्बन्ध में हम अमृतराज का कथन उद्धृत करना चाहते हैं जिससे प्रेमचन्द्र का राजनीतिक व्यक्ति साकार रूप धर बैठता है- "उन्होंने लेख लिखे हैं, पत्रों की टिप्पणियाँ लिखी हैं, असहयोगकी कहानियाँ लिखी हैं. पम्फ्लेट लिखकर साधारण लोगों को साधारण रूप से स्वराज्य में फायदे समझाये हैं, प्रेमाश्रय जैसा उपन्यास लिखा है, जिसमें आने वाले आन्दोलन के प्रारूप के साथ - साथ उसके आवेश की झंकाबी करवटें भी हैं, "संग्राम "जैसा नाटक लिखा है जिसमें " इस आन्दोलन के गाँव में प्रवेश करने की जीती-जागती तसवीर है और आपसीमारकाट की आग को ठंडा करने के लिए"कर्बला" की शकल में एक घड़ा पानी भी लेकर दौड़े हैं जब जैसी जरूरत हुई है, कभी आलस्य नहीं किया,

---

1. कलम का सिपाही/पृष्ठ - 331 .

2. वही / पृष्ठ- 331 .

प्रमाद नहीं किया । वह तो सिपाही हैं देश के, ऐसे सिपाही जिसे एक साथ कितने ही मोर्चों पर लड़ना पड़ता है । ।[2]

यह लघु विवेचन के पश्चात " निष्कर्षतः यह कहना उचित होगा कि प्रेमचन्द्र का व्यक्ति राजनीति की सक्रिय गतिशीलता से कथमपि नहीं जुड़ा किन्तु वैचारिक रूप से वह राजनीति से पूर्णतः सम्बद्ध रहे, पत्नी शिवरानी देवी विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार में पिकेटिंग करते गिरफ्तार भी की गयी । यही कारण है कि उनके कहानी उपन्यासों में राजनीति का पारिस्थितिक स्वरूप स्पष्टतः प्रतिबिम्बित हुआ है । हाँ उनकी राजनीतिक - सोच नैतिक संस्कार की भावभूमि पर अंकुरित होकर पल्लवित एवं पुष्पित होने के लिए लालायित रही, उस के सौरभ का वास "रंगभूमि" प्रेमाश्रय " और कर्बला जैसे उपन्यासों में बिखरा परिलक्षित होता है ।

---

2. कलम की सिपाही /पृष्ठ - 324-325 .

xxx अध्याय – 5 xxx

-:-:-:-:-:-

" गांधीवाद की अवधारणा एवं स्वरूप"

महात्मा गांधी बीसवीं शती के अत्यन्त व्यावहारिक – समन्वयवादी महापुरुष थे। गांधीवाद को हम प्रकारान्तर से गांधी का जीवन – दर्शन से स्वीकार करें तो अति उपयुक्त होगा। गांधी जी एक ऐसे महापुरुष थे जिनका जीवन सांसारिकता की अवहेलना न करते हुए भी मूलतः आध्यात्मिक विचारधारा से सम्पृक्त रहा। उनकी चिन्तन धारा का मूल था भौतिक आवश्यकताओं की ओर कम से कम अभिमुख होना। उनकी इस चिंतन प्रक्रिया पर भारतीय उपनिषद् के सर्वात्मवाद का प्रभाव था – यह दृष्टिगत समग्र विश्व परम बल द्वारा उत्पन्न किया हुआ है। अतः सबमें वितरित करने के पश्चात ही उपभोग करना उचित है, साथ ही किसी के अंश की अभिलाषा रखना संगत नहीं।[1]

---

1. ईशा वास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत्।
   तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

   ईशा० / 1

गांधी जी का मत था - अपने देश और उसके द्वारा मानवता की निरन्तर सेवा ही मेरे लिए मोक्ष का मार्ग है । मै प्रत्येक जीवित वस्तु के साथ अपने का एकाकार कर देना चाहता हूँ ।[1] धवन ने गांधी जी के जीवन - दर्शन को पारिभाषित करते हुए लिखा है - "धर्म और नैतिकता उनके विचारों और आचरण की आधार-शिला, उनका जीवन- प्राण है । [2] गांधी जी वस्तुतः गीता का कर्मयोग जीवन का व्यावहारिक पक्ष रहा उनके सत्य, अहिंसा, के नियम गीता के निष्काम कर्मयोग को समगतः आत्मसात किए हुए रहे हैं, उनके अनुसार -"गीता को शिक्षा को व्यवहार में लानेवाले को अपने आप सत्य और अहिंसा का पालन करना पड़ता है । फलासक्ति के बिना न तो मनुष्य को असत्य बोलने का लालच होता है, न हिंसा करने का ।[3] " गांधीवाद वस्तुतः भारत

1.

2. सर्वोदय - तत्व - दर्शन / पृष्ठ 29

3. गांधी साहित्य भाग 3 / पृष्ठ 110

की उस आचार परक अध्यात्मिक अनुकूल परिवर्द्धित एवं संशोधित संस्करण है। जो शताब्दियों से सत्या, अहिंसा, प्रेम, त्याग, सहिष्णुता, अस्तेय, अपरिग्रह, आत्मसंयम आदि नैतिक मूल्यों को भौतिक जीवन - मानों की अपेक्षा अधिक काम्य और वरेण्य मानती है आयी है ।[1] इन्ही प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों का परिष्कृत एवं व्यावहारिक रूप गांधीवाद के रूप में प्रतिष्ठित हुआ । गांधीवाद को निम्न सूत्रों में संयोजित किया जा सकता है -

सत्य :-

वाणी एवं दैनंदिन आचरणों द्वारा सत्य की साधना ही सत्य की प्रतिष्ठा है, यह गांधीवाद चिन्तनधारा की आधारशिला है । सत्या का अर्थ है - "सत्य" सत् से निष्पन्न हुआ है। सत् का अर्थ है - अस्ति - सत्य अर्थात अस्तित्व । सत्य के बिना दूसरी किसी वस्तु का अस्तित्व ही नही है ।[2] गांधी का सत्य न कोई धर्म है,

---

1. गांधी और गांधीवाद : प्रथम भाग ले० डा० बी० पट्टाभि सीतारमैया / पृष्ठ 28

न कोई संप्रदाय, वह एक सार्वभौम व्यापक तत्व है, जिसकी सीमा में मनुष्य का समग्र परिसीमित होकर उसकी आभा से जीवन्त बना करता है। गांधी के विचार रहा है कि सतत् आभ्यास तथा बैराग्य द्वारा ही सत्य रूप कामधेनु एवं पारसमणि की प्राप्ति हो सकता है।[1] वस्तुतः सत्य की प्रतीति सहज तथा सरल नही है। सत्य की प्राप्ति का मार्ग तलवार की धार के सदृश नुकीला तथा संकीर्ण है। उस मार्ग का अनुसरण करने वाला सत्य - शोधार्थी रंचमात्र भी आसा बधानी होने पर प्राण - हानि का भजन बन सकता है।[2]

अहिंसा :-

गांधी दर्शन के अनुसार अहिंसा एवं प्रेम वस्तुतः एक

---

1. गांधी साहित्य॥ भाग-5॥/ पृष्ठ 116

2. पृष्ठ 16

ही अर्थ को बोध कराते हैं - अनेक धर्मों में जो ईश्वर प्रेम स्वरूप है, कहा गया है, वह प्रेम तथा यह अहिंसा भिन्न नहीं नहीं हैं । प्रेम का शुद्ध व्यापक रूप नहीं हो सकता ।[1] अहिंसा-पूर्ण आचरण को कतिपय अपरिपक्व - बुद्धि के विचारक कायरता का द्योतक स्वीकारते हैं, परन्तु कथमपि उचित नहीं । गांधी जी का पूर्ण विश्वास है - हिंसक मनुष्य तो फिर भी किसी दिन अहिंसक बन सकता है पर कायर कदापि नहीं । वे मानते थे कि अहिंसा वीरों का धर्म है । कायरों का नहीं । उन्होंने स्पष्टतः घोषित किया था कायरता और हिंसा में से किसी एक को चुनने का प्रश्न उठने पर वे हिंसा को चुनने की ही सलाह देंगे ।[2] " डा० पट्टाभि सीता रम्मया ने स्पष्ट कहा है " कि जैसे हम पागलों और अपराधियों को - पुनर्शिक्षित करते हैं, इसी प्रकार हमें युद्धाधिपतियों, लोलुप

---

1. गांधी - विचार दोहन / पृष्ठ 16
2. यंग इण्डिया / 11. 8. 1920 / पृष्ठ 711

राजाओं, बदला लेने वाले शासकों, क्रुद्ध भाई, प्रतिशोध की भावना से भरे पति और हठी बालकों को पुनर्शिक्षित करना है। गांधी जी ने इन सबकों एक पृथक श्रेणी में रखा है और इन पर एक नये विज्ञान अथवा नये नियम का जो कि प्रेम का नियम है, एक नये दर्शन का जो कि अहिंसा का दर्शन है, प्रयोग किया है।[1] वस्तुतः, अहिंसा की परम्परा भारत ही न अन्य देशों में भी अत्यन्त प्राचीन है। गांधी से पूर्व कुल मिलाकर वह वैयक्तिक अनुशासन का एक साधन ही था और वह भी निषेधात्मक। महात्मा गांधी ने इसे एक विधेयात्मक शक्ति का रूप देकर, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक क्षेत्रों में भी उसका सफल प्रयोग किया। उपनिषद, महाकाव्य, श्रीमद भागवत, पतंजलि का योग सूत्र जैन और बौद्ध धर्म, चीन के ताओ धर्म के प्रवर्त्तक लाओत्से चीन के ही महर्षि कन्फ्यूशियस, प्राचीन ग्रीस के महर्षि सुकरात, ईसा का पर्वत पर धर्म - शिक्षण, टालस्टाय - अहिंसा की इस सुदीर्घ परम्परा का ही विकास गांधी में प्राप्त होता है।[2]

---

1. गांधी और गांधीवाद (भाग 1) पृष्ठ 36

2. रामदीन गुप्त : प्रेमचन्द और गांधीवाद / पृष्ठ 85

सत्याग्रह :-

गांधी - विचार - दोहन में उल्लेख है - सत्याग्रह के मूल सिद्धान्तों को अपने पारिवारिक - जीवन में खोज सकते हैं। गांधी जी कहा करते थे कि उन्होंने सत्याग्रह का पाठ अपने कौटुम्बिक जीवन से ही सीखा था । इसीलिए उनका मत है कि सत्याग्रह मूलतः पारिवारिक जीवन का राष्ट्रीय और उससे भी आगे अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में विस्तार है। अधर्म पर धर्म द्वारा असत्य पर सत्या द्वारा, अहिंसा पर हिंसा द्वारा पाशविक वृत्ति पर आत्मबल तथा मानुषिक- वृत्ति द्वारा, घृणा द्वेष पर प्रेम द्वारा विजय प्राप्त करने की एक ऐसी प्रक्रिया का नाम सत्याग्रह है जो विरोधी का भी मानवता को जागृत करने में सक्षम है । सत्याग्रह द्वारा विरोधी शरीर नहीं अपितु हृदय को प्रभावित कर उसे विजित किया जाता है । गांधीवादी शब्दावली में जो हृदय - परिवर्तन स्वीकारा जाता है, वह सत्याग्रही के विचार से इन शब्दों के परिभाषित

---

1. गांधी और गांधीवादी (भाग 1) पृष्ठ 64

है - किसी को दबा देने की अपेक्षा उसका मत परिवर्तन कर देना ज्यादा अच्छा है ।[1] गांधी जी कहा करते थे - साध्य और साधन में वही घनिष्ट संबन्ध है जो बीज तथा वृक्ष में होता है । शैतान को भजकर ईश्वर - भजन का फल नहीं प्राप्त हो सकता ।[2]

हम गांधीवाद के इन्हीं सूत्र - मंच के आधार पर प्रेमचन्द के साहित्य का अपनी गति - मति के अनुकूल विवेचन प्रस्तुत करेंगे -

प्रेमचन्द्र - साहित्य में गांधी - चिन्तन

प्रेमचन्द्र साहित्य में गांधी चिन्तन का विश्लेषणात्मक - आकलन प्रस्तुत करने की सुविधा के लिए हम उनके उपन्यासों को कालक्रमानुसार दो काल अथवा युगों के अन्तर्गत रखे तो संगम

---

1. सत्याग्रह मीमांसा / पृष्ठ 52
2. हिन्दी स्वराज/ (1946) / पृष्ठ 51

होगा । जैसा कि ऊपर के अनुच्छेद में कहा जा चुका है गांधी वाद अथवा गांधी चिन्तन गांधी जी का निजी प्रसूति नहीं अपितु भारतीय - संस्कृति की लोकमंगल की प्रवाहित अजस्र सुधा - धार के बिखरे कतिपय बिन्दुओं के शाश्वत करण हैं । जैसे उनके व्यक्तित्व में भारतीयता मुखर हो उठी । कहने का अर्थ यह कि जब तक गांधी भारतीय समाज के क्षितिज पर दिवाकर प्रभा न बिखेर पाये, थे, बीसवीं शती की चमत्कारी विचार - धारा जिसने गांधीवाद की संज्ञा ग्रहण की, प्रति - स्थापित न थी, भारतीय मनीषा को प्रतिमूर्ति प्रेमचन्द के चिन्तन का अंग बन चुकी थी । अतः पहले हम एक गांधीयुगीन उपन्यासों में इस चिन्तन का आकलन, तात्पश्चात् गांधी युगीन कृतियों में आकलित करना चाहेंगे ।

<u>प्राक गांधी युगीन उपन्यास :-</u>

इस कोटि के उपन्यासों में यह "वरदान प्रतिज्ञा" सेवा सदन" तीन को परिगणित कर सकते हैं ।

वरदान :-

यह प्रेमचन्द्र का प्रारम्भिक उपन्यास है, न तो पात्र और न लेखक ही प्रौढ़ प्रतीत पाते हैं, तथापि इसका कथानक सामाजिक- परिवेश को राष्ट्रीय - चिन्तन धारा से सम्पृक्त करने का किञ्चित प्रयास करता हमें आभास देता है । उपन्यास के नायक बाला जी, देवा से देश भक्त पुत्र की या ना स्वरूप हैं किन्तु उसका चरित्र उस निकष पर उपयुक्त न के समान है । यह एक असफल प्रेमी के अतिरिक्त कुछ भी अधिक नहीं प्रतीत होता । वह अपनी प्रेमिका विरजन को हस्तगत हो जाने को प्राप्ति निमित्त अन्त तक प्रयासरत रहता है वह कमलाचरण के निधनोपरान्त एक बार पुनः विरजन को हस्तगत हो जाने की कल्पना से अभिभूत होता है परन्तु उसके विधवापन की सौम्यता से प्रभावित होकर साधु बन जाती है। यह यहाँ सर्वथा व्यक्तित्वहीन चरित्र है। यह तो प्रेमचन्द द्वारा साज - सँवारकर खड़ा

किया गया नायक है, जिसके एक - एक कार्य कलाप पर लेखक की सामास - चेष्टा का आभास मिलता है। इस प्रकार हम उसे एक ऐसा घट मान सकते हैं जिस पर उसका निर्माता अंगुलियों के चिन्ह से परिलक्षित होता है। अलौकिक शक्ति के वरदान स्वरूप अद्भुत देश भक्ति के भावों का समावतरण व्यक्ति, विशेष में करा देना, प्रकारान्तर से बुद्धिगम्य, नहीं मालूम होता है। सामाजिक समस्या के बहाने अनमेल विवाह करा देना किस सीमा तक सराहनीय कहा जा सकेगा ? समस्या समग्र उपन्यास में कदापि दृष्टिगत नहीं होती ।

वरदान में प्रेमचन्द यद्यपि " जाति सेवा" को देश सेवा का पर्याय समझते हैं तथापि उपन्यास के पात्र राष्ट्रीय आत्म गौरव की भावना से अभिभूत प्रतीत होते हैं -" विरजन के श्वसुर डिप्टी श्यामाचरण एक बार अंग्रेज सरकार को सलाम करने गये । दो घण्टे बाहर प्रतीक्षा करने के बाद साहब बहादुर बाहर निकले और फिर कभी आने के लिए कह कर क्लब चले गये । [1] उपन्यास में एक चरित्र बाबू

---

1. वरदान / पृष्ठ 25 - 26

राधाचरण है जिन्होने देश सेवा के लिए सरकारी नौकरी से त्याग पत्र देते दृष्टिगत होते हैं ।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि "वरदान का महत्व उसके वस्तु विन्यास, चरित्र चित्रण अथवा उद्देश्य के कारण नहीं बल्कि इस बात में है कि उसके रचना- काल में भी प्रेमचन्द उन सब बातों के बारे में सोचने लगे थे जिनका चित्रण उनके बाद के साहित्य में मिलता है । अतः प्रेमचन्द्र के साहित्यिक और वैचारिक विकास क्रम को समझने के लिए वरदान का महत्व निर्विवाद है । [2]

प्रतिज्ञा :-

इस उपन्यास में मूलतः विधवा समस्या का समाधान ढूढ़ना का प्रयास किया गया है। इस समस्या के समाधार हेतु आर्यसमाज प्रतिबद्ध ढंग से आन्दोलन भी करता रहा सम्भवतः वही प्रभाव प्रेमचन्द्र पर पड़ा हो और उन्होंने इस उपन्यास की रचना की

---

1. वही / पृष्ठ 149

2. उपन्यासकार प्रेमचन्द और गांधीवाद रामदीन गुप्त एम0ए0 पृष्ठ 145.

हो । प्रतिज्ञा" के अनुशीलनोपरान्त निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि चाहे इसकी रचना आर्यसमाज के प्रभाव से ही क्यों न हुई हो परन्तु गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक परिलक्षित होता है। स्पष्ट है कि " प्रतिज्ञा" में प्रेमचन्द्र ने विधवा समस्या का समाधान विधवा विवाह को नहीं स्वीकारा है । अन्ततः पूर्णा को विधवा आश्रम भिजवाकर उपन्यासकार उसके लिए कृष्णभक्ति रूपी आध्यात्मिक आश्रय सुनिश्चित करता है ।पुनर्विवाह के प्रश्न पर जहाँ एक ओर गांधी जी स्त्री - पुरूष को समानाधिकार का समर्थन करते हैं वहीं वह दूसरी ओर प्रौढ़ावस्था में पुनर्विवाह को धर्म - विरुद्ध और नितान्त अनुचित निरूपित करते है । अर्थ यह कि सिद्धान्ततः प्रौढ़ विधवा विवाह के पक्षधर गांधी जी व्यवहारतः उसे सामाजिक मान्यता न देना ही श्रेयस्कर समझते हैं ।[1] इसीलिए प्रतिज्ञा का रचयिता प्रौढ़ विधवा- विवाह को

---

1. × × × स्त्रियों के लिए भी वही नियम लागू होना चाहिए जो पुरुषों के लिए हो । अगर पचास साल का बूढ़ा विधुर बेरवट के दुबारा शादी कर सकता है तो उसी उम्र की विधवा को भी वैसा [illegible] करने की छूट होनी चाहिए ।

यह बिल्कुल [illegible] बात है कि मेरी राय में पुनर्विवाह करके [illegible] दोनों ही पाप करेंगे- [illegible] र उनकी समस्याएं: संपादक: भारतनकुमारप्पा / 63

मान्यता देकर नारी के सतीत्व, उसकी पति व्रता एवं उच्च आदर्श को प्रतिष्ठा पर आँच नहीं आने देता । प्रेमचन्द इस उपन्यास में अपने आदर्शोन्मुखी दृष्टिकोण की भावभूमि पर अवस्थित रहकर भी आर्यसमाज तथा गांधीवादी विचारधारा दोनों के मूलभूत भावना को संरक्षित रखा है । उपन्यास में पूर्ण एवं सुमित्रा के पारस्परिक कथोपकथन द्वारा भारतीय - नारी उद्बुद्धता जागृत स्वाधिकारों के प्रति सजगता का दिग्दर्शन प्राप्त होता है। उस युग में भी नारी अन्याय - प्रतिकार की चेतना से कथमपि अनभिज्ञ नहीं कही जा सकती ।[1] पुरुष शासित - समाज में पला उपन्यास का पात्र कमला प्रसाद को सुमित्रा का व्यवहार जो स्वेच्छारी- पुरुष के आक्रोशपूर्ण रहता, कदापि सह्य न था परन्तु सुमित्रा का स्वाभिमान की पराकाष्ठा का उपन्यासकार ने वर्णित किया है । वह अपने दुराचारी पतिदेव के अत्याचारों को सहना सर्वथा अनुचित स्वीकारती है। वह उसके कृत्यों के साथ समझौता नहीं करती ,

---

1. प्रेमचन्द्र और गांधीवाद : रामदीन गुप्त / पृष्ठ 150

आत्मसमर्पण नहीं करती वह विरोध का स्वर उठाती दृष्टिगत होती है। यहाँ तक कि वह घर से निकाल दिये जाने पर भी हतो-त्साहित नहीं होती, झुकना तो उसकी प्रकृति में जैसे रहा[1] ही नहीं। "वीमेन एण्ड सोशल इन्जस्टिस" में गांधी जी स्वीकारते है कि वर्तमान समाज - व्यवस्था में अशिक्षित ही नहीं शिक्षित पति भी स्त्री पर पुरुष के स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश शासन में विश्वास करते हैं जो किसी भी दशा में स्पृहणीय अवस्था नहीं कही जा सकती[2] सम्भवतः इस उपन्यास का कथानक प्रेम व्यापार- पोषित समस्या है, इसमें लेखक ने नारी स्वातंत्र्य, स्त्री पुरुष के समान अधिकार प्रत्येक

---

1. बस, बस तुमने लाख रुपये की बात कह दी। यही मैं भी समझती हूँ। बेचारी औरत कमा नहीं सकती, इसीलिए उसकी यह दुर्गति है। लेकिन मैं कहती हूँ अगर मर्द अपने परि-वार भर को खिला सकता है, तो स्त्री क्या अपनी कमाई से अपना पेट भी नहीं भर सकती। "प्रतिज्ञा" x 100-101
2. वीमेन एण्ड शोसल इनजस्टिस / पृष्ठ 90

क्षेत्र में समानता की भावना, नारी को आर्थिक - परवशता, पुरुष की स्वच्छन्द - प्रवृत्ति आदि पर प्रहार किया गया है ।

यह उपन्यास प्रेमचन्द्र का पाक गांधी युगीन कृति है जिसका प्रारम्भिक नाम " प्रेमा " था। वस्तुतः इसका वर्तमान स्वरूप भारतीय समाज तथा राजनीति परगांधी जी का प्रभाव पड़ जाने के बाद संवारा गया । इसीलिए इस पर गांधी जी की सोच का प्रति - बिम्बन झलकता है । गांधी जी की विचारधारा का स्पष्टतः प्रभाव प्रेमा के उस भाषण से प्रतीत होता है सकी चमत्कारी-परिणति गुण्डों का मानसिक - स्थिति को परिवर्तित करने में सफल हो जाती है। साथ ही गांधी जी के विश्वास की प्रतीति भी कि स्त्री त्याग की मूर्ति , जब वह कोई चीज शुद्ध और सही भावना से करती है तो पहाड़ो को हिला देती हैं । प्रेमचन्द के उपन्यास - आलोचक उनकी कृतियों का विभाजन दो वर्गों में करते हैं -सामाजिक और राजनीतिक , राजनीति वर्ग से आनेवाली कृतियों पर मुख्यतः

---

1. स्त्रियां और उनकी समस्याएं : संपादक - भारतन कुमारप्पा / पृष्ठ 3।

काग्रेस और महात्मा गांधी का प्रभाव माना जाता है तथा सामाजिक वर्ग में आने वाली कृतियों पर मुख्यत: आर्य समाज और अन्य समाज सुधार वाली संस्थाओं का प्रभाव ।[1]

इस वर्गीकरण को प्रकारान्तर से एक अदूरदर्शिता पूर्णमान उसे अस्वी- करते हुए श्री रामदीन गुप्त ने लिखा है - प्राय: यह भुला दिया जाता है कि किसी भी युग अथवा देश की समाजनीति और राजनीति के मध्य किसी व्यावर्तक रेखा का खींचा जाना न तो संभव ही है और न उचित ही क्योंकि प्राय: सामाजिक - जागृति राजनीतिक जागृति की पूर्वगामिनी तथा पूरक हुआ करती है । x x गांधी जी जानते थे कि राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए सामाजिक बुराइयों से मुक्ति आवश्यक है । यही कारण है कि अस्पृश्यता - निवारण, मद्य निषेध, प्रौढ़ शिक्षा, आदिवासियों की सेवा, स्त्रियों की उन्नति, स्वास्थ्य और सफाई की शिक्षा जैसे सामाजिक प्रश्न उनके अट्ठारह सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम

---

1. युग और साहित्य : शान्तिप्रिय द्विवेदी / पृष्ठ 293-94

के अभिन्न अंग हैं। यही कारण है कि प्रतिज्ञा आदि प्रेमचन्द्र के तथा - कथित उपन्यासों पर भी महात्मा गांधी का इतना अधिक प्रभाव पड़ा है ।[1]

सेवा सदन -

ईश्वर वह दिन कब लायेगा कि हमारी जाति में स्त्रियों का आदर होगा ।[2] प्रतीत होता यह प्रेमचन्द सर्वाधिक पवित्रतम अभिलाषा तथा जीवन का एक स्वप्न था। सेवा-सदन का अनुशीलन हमें संकेतित करता है कि कदाचित उपन्यास में इसी समस्या का उद्घाटन किया गया है । प्रेमचन्द्र की धारणा रही कि समाज समग्र की स्वाधीनता, सम्पन्नता और प्रगतिशीलता का अनुमान स्त्री- समाज की स्वाधीनता सम्पन्नता से ही ठीक - ठीक लगाया जा

---

1. रामदास गुप्त : प्रेमचन्द और गांधीवाद /पृष्ठ 152

2. सेवासदन / पृष्ठ : 347

सकता है । उनका सम्पूर्ण साहित्य ऐसे दृष्टिकोण - आख्यानों व्याख्यानों से भरा पड़ा है सेवा सदन" में स्त्री समाज की सम्पन्नता के लिए संघर्ष गाथा का विवेचन है, वह चाहे वेश्या-समस्या के व्याज से अथवा नारी प्रकृति एवं नारी-जीवन के अन्य किसी पक्ष को दृष्टिगत रख किया गया है। गांधी जी वेश्या- वृत्ति का प्रमुख कारण "पुरूष की चिर अतृप्त विलास - वासना स्वीकारते हैं । उनका मानना है अपनी पाशविक इच्छाओं की पूर्ति के हेतु ही पुरूष ने मातृत्व पर यह कलंक लगाया है। उनका मत था कि यदि भारत का पुरूष वर्ग वेश्याओं के प्रति अपने उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य - कर्म को जान ले तों यह बुराई आज समाप्त हो सकती है । [1] गांधी जी के इस कथन का संकेत पुरूष की नैतिक प्रवृत्ति को जगाने से संबन्धित है जिसे हम केवल संत का उपदेश कह सकते हैं, समस्या समाधन का सूत्र कदापि नहीं । वस्तुतः वेश्या - वृत्ति का कारण पुरूष की विलास - प्रियता अथवा अतृप्त काम वासना

---

1. x वोमेन एण्ड सोशल इनजस्टिस / पृष्ठ 139 - 40

नही अपितु पुरुष की थोथी अहमन्यता है जिसका परिणाम है समाज की ऐसी गर्हित - व्यवस्था जिसके अन्तर्गत नारी को सम्मानित सदस्य न स्वीकार, उसे निज वृत्ति- पोषिका का मान, पुरुष की विलास - वस्तु, उसकी काम-वासना की भूमि स्वीकारा गया । प्रेमचन्द अपने इस " सेवा सदन" ही नही बल्कि अन्य उपन्यासों में भी वेश्या- वृत्ति उन्मूलन के सन्त बनकर शिक्षा नहीं दी है अपितु उसके कारणों पर विचार तथा निवारणार्थ सूत्र का संकेत करना चाहा है ।

पूर्व परिच्छेद में उद्धृत महात्मा गांधी का दृष्टिकोण पूर्णतः सन्तोपदेश - समान है जो मध्ययुगीन सन्त - साहित्य का केन्द्र बिन्दु रहा है। गांधी एक सन्त की भाषा में इच्छाओं एवं तृष्णाओं पर संयम द्वारा नियंत्रण कर इस (वेश्या- समस्या) समस्या का निराकरण स्थापित करना चाहते हैं जबकि उपन्यासकार प्रेमचन्द

इस समस्या को मूलतः सामाजिक तथा अनुषंगतः आर्थिक समस्या को भावभूमि पर रखना और देखना एवं उसी परिप्रेक्ष्य उसका समाधान खोजते प्रतीत होते हैं । गांधी का चिन्तन एक पक्षीय अर्थात उपदेशात्मक है । प्रेमचन्द का बहुपक्षीय सुधारात्मक है । सेवासदन की सुमन प्रेमचन्द के उपन्यास - साहित्य की प्रथम और सशक्त विद्रोही प्रवृत्ति की नारी प्रतीत होती है। नित्य -प्रति के गार्हस्थ्य जीवन में उस जैसी गृहिणी का असम्मान उसके कोमल हृदय को विदीर्ण करता है, उसका अन्तः ऐसा कोई अवसर कोई ऐसा एक आधार चाहता है । जो उसको एक समादृत, श्रेष्ठ नारी प्रतिष्ठित करने में सहायक बन सके । वह बेचारी उस स्थिति से और भी अधिक आहत हो उठती है। जब न केवल धन बल्कि धर्म भी उस भोली - भाली का शोषक ही है, पोषक नही ।उसने देखा कि रामनवमी के जन्मोत्सव पर मन्दिर में उसकी पड़ोसिनि का

सुश्रद आदर- सत्कार हो रहा है ।[1] गांधी जी का दृष्टिकोण कथमपि नवीन नहीं, वह हमारी भारतीय संस्कृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित सेवा, प्रेम और त्याग का आदर्श है । सेवा सदन का रचनाकार इन्हीं मानवीय गुणों का प्रतिपादक है ।

---

1. रामनौमी के दिन सुमन कई सहेलियों के साथ एक मंदिर में जन्मोत्सव देखने गयी ।× × × सुमन ने खिड़की से आगन में झाँका तो क्या देखती है कि उसकी पड़ोसिन भोली बैठी हुई गा रही है । सभा में एक से बड़े आदमी बैठे हुए थे कोई वैष्णव तिलक लगाये, कोई भस्म रमाए, कोई गले में कंठी माला- डाले और राम- नाम की चादर ओढ़े , कोई गेरुए वस्त्र पहले । उनमें से कितनों ही को सुमन नित्य गंगा-स्नान करते देखती थी । × × × भोली जिसकी ओर कटाक्षपूर्ण नेत्रों से देखती थी वह मुग्ध हो जाता था मानों साक्षात राधा कृष्ण के दर्शन हो गये। इस दृश्य ने सुमन के हृदय पर वज्र का सा आघात किया। उसका अभिमान चूर-चूर हो गया वह आधार जिस पर वह पैर जमाये खड़ी थी, पैरों के नीचे से सरकगया। सुमन वहाँ एक क्षण भी खड़ी न रह सकी ।
सेवा सदन-/ 29-30

हमारी धारणा है कि ऐसी ही भावभूमि पर विभिन्न आलोचकों को विश्लेषित भी किया है। रामरतन भटनागर के मत में —प्रेमचन्द जी ने समस्या के आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारणों की जाँच न करके सीमित मध्यवर्गीय सुधारवादी दृष्टिकोण से ही उसका चित्रण किया है।[1] यह आलोचना कुछ सीमा तक प्रेमचन्द के दृष्टिकोण का सापेक्ष भोगी प्रतीत होता है, क्योंकि उपन्यासकार स्वयं भी

---

1. स्पष्ट है कि प्रेम चन्द्र समस्या के आर्थिक या मनोवैज्ञानिक पहलू के भीतर नहीं घुसते। वे मध्यवर्ती की सुधारवादी प्रकृति से आगे नहीं बढ़ते। वेश्याएं चौक से इसलिए हटा दी जाएं कि वे संक्रामक हैं। नाँच – मुजरेवाली जगह इस लिए न हो कि सुमन की तरह कोई दुर्बल नारी गृहिणीपद से स्खलित न हो जाय। शहर के पार्कों में बाजारों में, वेश्याएं न घुस सकें कि मध्यवर्ग के छैले न फंस जायें। यह समस्या को देखने का सीमित दृष्टिकोण है।

   – प्रेमचन्द : डॉ0 रामरतन भटनागर (प्रथम संस्करण) पृष्ठ – 70)

"सुमन" द्वारा वेश्यावृत्ति अंगीकार कर लिए जाने से उतना उद्वेलित नही है जितना कि " ब्राह्मणी सुमन" द्वारा ऐसा करने से । यह तथ्य सेवासदन" के पात्र विठ्ठलदास के संकीर्ण तथा सीमित विचारधारा से स्पष्ट होता है । [1]

प्रेमचन्द वस्तुतः एक आदर्शोन्मुखी- प्रवृत्ति के रचनाकार है । वह उस आदर्श से दूर होना आत्महनन मानते थे। उनका यह उत्कट आदर्श उन्हें इस प्रकार आबद्ध किए प्रतीत होता है कि वह किसी

---

1. माना कि तुम्हारा पति दरिद्र था, क्रोधी था, चरित्रहीन था माना कि उसने तुम्हें अपने घर से निकाल दिया था, लेकिन ब्रह्मणी अपनी जाति और कुल के नाम पर यह सब दुःख झेलती है। आपत्तियों का झेलना और दुरावस्था में स्थिर रहना यही सच्ची ब्राहमणियों का धर्म है, पर तुमने वह किया जो नीचा जाति की कुलटाएं किया करती हैं x x सुमन तुम्हारे इस कार्य ने ब्राहमण जाति ही का नहीं समस्त हिन्दू जाति का मस्तक नीचा कर दिया ।

सेवासदन" / पृष्ठ 90

भी स्थिति में सामाजिक यथार्थ को अनदेखा नहीं कर पाते और न उसके प्रतिकूल चिन्तन ही। यही कारण है जो वह "सेवासदन" की सुमन को दालमण्डी से तो बाहर निकालते हैं परन्तु समाज में प्रतिष्ठित नहीं कर पाते उसे वह "सेवासदन" की अध्यक्षा बनाकर विराम लेते हैं। कारण सामाजिक दृष्टि से "सुमन" भले ही दालमण्डी से मुक्त हुई किन्तु, वह उसकी सम्मानित सदस्या के रूप में स्वीकार्य नहीं हो सकती। परिणाम यह कि जो वेश्या सुमन के द्वार पर नाक रगड़ता रहा वही अब उसको कुष्ठ – रोगी कहकर उससे दूर रहना श्रेयस्कर समझते हैं।[1] यह यथार्थवादी कलाकार के सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिणाम है। "सेवासदन" वस्तुतः सामाजिक समस्याओं को उजागर करके उनके समाधान के प्रति सजग होने की ओर सचेष्ट करने वाला उपन्यास है, उसे मात्र वेश्या समस्या पर सीमित करना प्रेमचन्द्र के साथ अन्याय करना होगा इसमें किसानों के प्रति होनेवाले शोषण

---

1. सेवा सदन / पृष्ठ 319

और अन्य अत्याचारों के विरुद्ध भी वातावरण समुपस्थित करने का अवसर है। रामदास महन्त तो अपना सारा का सारा वैभव श्री बांके बिहारी जी के नाम पर एकत्र कर रखे हैं। श्री बांके बिहारी जी के ही नाम पर समस्त लेन देन होता, वसूली होती। सेवा सदन का रचनाकार धन तथा धर्म की इस मिली भगत इस सांठ-गांठ और इस अपवित्र गठजोड़ का व्यंग्यात्मक, कथन कर अपना संवेदनशील हृदय ही निकाल कर रख देता प्रतीत होता है।

---

1. श्री बांके बिहारी जी लेन- देन करते थे और 32 रु० सैकड़े से कम सूद न लेते थे। श्री बांके बिहारी जी की रकम दबाने का किसी को साहस न होता था और न अपनी रकम के लिए दूसरा आदमी उनसे कड़ाई कर सकता था। श्री बांकेबिहारी जी को रुष्ट करके उस इलाके में रहना कठिन था।

— सेवासदन / पृष्ठ 7

यही नहीं ज़मींदार - किसान - संघर्ष और साम्प्रदायिक -वैमनस्य के माध्यम से प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में विदेशियों द्वारा कृषक - शोषण एवं भारत की आत्म-ग्लानि का एक सुस्पष्ट चित्रण भी उपस्थित किया गया है ।[1]

गांधी जी ने 1918 में उद्घोष किया था - जब तक हम हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी - अपनी प्रान्तीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देते तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं ।[2] इतना ही नहीं उनका यह मत था कि अंग्रेजी का ज्ञान

---

1. उसके देशवासी सिर पर बड़े- बड़े गट्ठर सिर पर लादे एक सकरे द्वार पर खड़े है और बाहर निकलने के लिए एक दूसरे पर गिरे पड़ते हैं। एक दूसरे दरवाजे पर हजारों आदमी खड़े अन्दर आने के लिए धक्कमधक्का कर रहे हैं। लेकिन दूसरी ओर एक चौड़े दरवाजे से अंग्रेज लोग छड़ी घुमाते कुत्तों को लिए आते जाते हैं । कोई उन्हें नहीं रोकता, कोई उनसे- नहीं बोलता- - सेवासदन / पृष्ठ 265-66.
2. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी : गांधी जी ‌{ अहमदाबाद 1959 पृष्ठ 15 }

भारतवासियों के लिए बहुत आवश्यक है लेकिन इस भाषा को उसका उचित स्थान देना एक बात है, उसकी जड़ पूजा करना दूसरी बात है ।[1] भारत के लिए राष्ट्रीय भाषा की अनिवार्यता, ड उसके स्वरूप साथ ही का संवर्धन से हित एवं अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्त से भारत का कितना बड़ा राष्ट्रीय अहित है आदि विचारधाराओं का अद्भुत साम्य है गांधी तथा प्रेमचन्द के कथनों में । "सेवासदन" में प्रेमचन्द का कथन है - यह हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय है हम कैसे ही चरित्रवान हो कितने ही बुद्धिमान हों, कितने ही विचारशील हों पर अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न होने से उनका कुछ मूल्य नहीं हमसे अधम और कौन होगा जो इस अन्याय को चुपचाप सहते हैं ।[2] स्पष्ट है, राष्ट्रभाषा तथा भारतीयता विषयक विचारधारा गांधी जी से प्रभावित है। प्रेमचन्द जी भारत की उन्नति औरसामाजिक

---

1. राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी (/ पृष्ठ 19

2. सेवासदन / पृष्ठ 288

सांस्कृतिक प्रगति के लिए हिन्दी को प्रतिष्ठित एवं अंग्रेजी को बहिष्कृत करने के पक्षधर रहे हैं । उन्होंने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के चतुर्थ उपाधि वितरणोत्सव में भाषण करते हुए घोषित भी किया था ।[1] इतना ही नहीं उपन्यास के एक पात्र अनिरुद्धसिंह के माध्यम से ही यह विचार स्पष्ट करना उन्होंने उचित समझा है - मेरी समझ में नहीं आता कि अंग्रेजी भाषा बोलने और लिखने में लोग क्यों अपना गौरव समझते हैं ।[2]

---

1. हमारी पराधीनता का सबसे अपमानजनक, सबसे व्यापक सबसे कठोर अंग अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व × × अगर आज इस प्रभुत्व को हम तोड़ सकें तो पराधीनता का आधा बोझ हमारी गर्दन से उतर जायेगा । × × × जिस दिन आप अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक ा कौमी भाषा बना लेंगे, उसी दिन आपको स्वराज्य के दर्शन हो जायेंगे - साहित्य का उद्देश्य (पृ0 153)
2. सेवासदन / पृष्ठ 253

प्राक गांधी युगीन उपन्यासों में गांधी जी की विचारधारा कथा, कथानक, घटना - सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्यानुकूल कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं अप्रत्यक्षत: अवतारित होती दृष्टिगत होती है। गांधी के सिद्धान्तों को सार्थ झलक उसके पश्चात की कृतियों में परिलक्षित है अत: इस दृष्टि से कतिपय उपन्यासों का अनुशीलनात्मक आकलन प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

प्रेमाश्रम :-

वस्तुत: इस उपन्यास का प्रेरणा- स्रोत गांधी जी का प्रथम असहयोग आन्दोलन है, जिसने भारत के राष्ट्रीय जीवन में राजनीतिक एवं सामाजिक जागरण का मंत्रोच्चारण किया था । प्रेमचन्द जी की स्वीकारोक्ति देखिए - गांधी जी राजनीतिके माध्यम से भारत के किसानों और मजदूरों के सुख - चैन के लिए जो प्रयास कर रहे हैं प्रेमाश्रम" उन्ही प्रयत्नों का साहित्यिक रूपान्तर है ।[1] सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रेमाश्रम" में प्रेमचन्द द्वारा

---

1. प्रेमचन्द घर में / पृष्ठ 95

प्रस्तुत किसान - समस्या का समाधान गांधी जी की विचारधारा से सम्पृक्त है। प्रेमाश्रम का तो संदेश ही है परिश्रम के फल का पूर्ण उपभोग किसान करें यह उसका अधिकार है। इस उपन्यास का प्रकाशकोय स्वयं कथ्य एवं उद्देश्य उद्घोषित करता है - प्रेमाश्रम में प्रेमचन्द ने जमीन जोतने वालों की सिद्धान्त का जोरो के साथ प्रतिपादन किया है और अपनी दृढ़राय व्यक्त की है कि जमींदारी प्रथा का अन्त होना चाहिए। उसके बिना न तो भारत का सामाजिक जीवन उन्नत हो सकता है न किसान सुखी और सम्पन्न हो सकता है। उपन्यास का पात्र मायाशंकर ऐसी ही विचारधारा का प्रतिनिधि है।[1] उपन्यास के अध्ययनोपरान्त यह संकेत

---

1. भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है इसलिए उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है चाहे प्रत्यक्ष रूप में ले या कोई इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को मीरास, मिल्कियत, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानों को अपना भोग्य-पदार्थ बनाने की स्वच्छंदता दी जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज-व्यवस्था का कलंकचिन्ह समझना चाहिए।

— प्रेमाश्रम / पृष्ठ 382

प्राप्त होता है कि गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का पूर्ण-तया प्रभाव कृति का जीवन है । ज्वाला सिंह इसी से प्रेरणा ग्रहण कर सरकारी पद का त्याग कर देता है ।[1]

प्रेमाश्रम" का गांधीवादी पात्र प्रेमशंकर, किसानों की निर्धनता का कारण फजूलखर्ची, आलस्य, अशिक्षा, अथवा अनभिज्ञता को नहीं, अपितु उन परिस्थितियों को मानता है। जिनके रहकर वह जीवन यापन करता है। अथवा विवशतावश उसमें जीवन

---

1. अब तो इस्तीफा देकर आये हैं और बाबू प्रेमशंकर के साथ रहना चाहते हैं । × × नेताओं ने देश को दरिद्रता के चंगुल से छुड़ाने के लिए चरखों और करघों की व्यवस्था की। सरकार इसमें बाधा डाल रही है।स्वदेशी कपड़े का प्रचार करने के लिए दुकानदारों और ग्राहकों को समझाना अपराध ठहरा दिया गया है - प्रेमाश्रम" / पृष्ठ 325-26.

जीने का वह [1] अभ्यस्त है प्रेमशंकर को किसानों से अपार सहानुभूति है किन्तु जैसा कि वह अपने जमींदार बन्धु ज्ञान शंकर से कहता है - इसका यह आशय नहीं कि उसे जमींदारों से कोई द्वेष हैं। [2] यह गांधी दर्शन की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है। गांधीवाद किसी भी व्यक्ति से चाहे वह शोषकवर्ग से ही क्यों

---

1. परिश्रमी तो इनसे अधिक कोई संसार न होगा। मित-व्ययिता में आत्मसंयम में गृह प्रबन्ध में वे निपुण हैं। x x आपस की फुट स्वार्थपरता, एक ऐसी संस्था का विकास जो उनके पाँवकी बेड़ी बनी हुई है। लेकिन जरा और विचार कीजिए तो यह तीनों कहानियाँ एक ही शाखा से फूटी हुई प्रतीत होंगी और यह वही संस्था है जिसका अस्तित्व कृषकों के रक्त पर अवलम्बित है। आपस में विरोध क्यों है? दुरवस्थाओं के कारण — "प्रेमाश्रम" / पृष्ठ 128

2. प्रेमाश्रम / पृष्ठ 152.

न सम्बद्ध हो घृणा करने की अनुमति नहीं देता । गांधी जी की विचारधारा घृणा द्वेष, कटुता इत्यादि विभाजित करने वाली प्रवृत्तियों से सर्वथा वंचित हैं । एक पात्र ज्ञान शंकर गांधीवादी को न समझने के लिए खेद व्यक्त करता है ।[1] इसी प्रकार वह अपने राज्य तिलक के अवसर पर स्वेच्छापूर्वक अपना सम्पूर्ण इलाका

---

1. मुझे भी खेद है कि उन महात्मा के दर्शनों से वंचित रह गया । जिसके सदुपदेश में यह महान शक्ति है, वह कितना प्रतिभाशील होगा । मैं कभी – कभी स्वप्न में उनके दर्शन से कृतार्थ हो जाता हूँ । कितनी सौम्य मूर्ति थी । मुखारबिन्द से प्रेम की ज्योति सी प्रसारित होती हुई जान पड़ती है । साक्षात् कृष्ण – भगवान के अवतार मालूम होते हैं ।

—— प्रेमाश्रम – /पृष्ठ 147

किसानों में बाँट देता है ।[1]

कादिर " प्रेमाश्रम " का सबसे प्यारा मानवीय और स्वाभाविक चरित्र है। प्रेमचन्द्र ने यद्यपि कादिर मियाँ का चरित्र - चित्रण उतने मनोयोग और विस्तार के साथ नहीं किया है जितने कि प्रेमशंकर का और न उसके चरित्र में गांधीवाद की समस्त विशेषताओं को ही एक साथ समाहित करने का प्रयास किया किन्तु फिर भी यह स्पष्ट है कि उसे उपन्यासकार की सर्वाधिक

---

1. मुझे किसानों की गर्दन पर अपना जुआ रखने का कोई अधिकार नहीं है । x x x मैं आप सब सज्जनों के सम्मुख उन अधिकारों और स्वत्वों का त्याग करता हूँ जो प्रथा, नियम और समाज व्यवस्था ने मुझे दिये हैं । मैं अपनी प्रजा को अपने अधिकारों के बंधन से मुक्त करता हूँ वह न मेरे असामी है और न मैं उनका ताल्लुकेदार । वह सब सज्जन मेरे मित्र हैं। मेरे भाई हैं आज से वह अपनी जोत के स्वयं जमींदार है। अब उन्हें मेरे करिन्दों

सहानुभूति प्राप्त है । वह प्रेमचन्द की हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की भावना का प्रतीक है ।[1]

"प्रेमाश्रम" उनकी पहली कृति है जिसमें गांधीवादी प्रभाव स्व-स्पष्टत: व्यक्त हुआ और इस प्रभाव को स्वयं प्रेमचन्द ने स्पष्टत: घोषित किया है। प्रेमाश्रम का स्वरूप लगभग वही है जिस प्रकार के आश्रम की स्थापना को प्रथम महात्मा गांधी ट्रान्सवाल, नेटाल और गुजरात में कर चुके हैं। चंपारन की सफलता के बाद गांधी जी का प्रभाव तीव्रता से बढ़ने लगा ।था और सन् - 1920 तक आते - आते भारतवर्ष की सम्पूर्ण बौद्धिक चेतना का नियामक बन गया । युगीन बोध के प्रति जागरूक और संवेदनशील होने के कारण प्रेमचन्द के लेखकीय व्यक्तित्व पर गांधी जी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का प्रभाव अत्यन्त व्यापक रूप से पड़ा ।[2]

---

1. प्रेमचन्द और गांधीवाद : रामदीन गुप्त / पृष्ठ 182
2. प्रेमचन्द : एक सिंहावलोकन : सं० प्रो० ह० श्री साने पृष्ठ 30 - 31

रंगभूमि :-

रंगभूमि प्रेमचन्द की आज तक की जीवन उपलब्धि का महाकाव्य है और उसमें सूरदास ही प्रेमचन्द है। वह एक आदर्श सत्याग्रही है लेकिन राजनीतिक आन्दोलन के सीमित अर्थ में नहीं, जीवन की एक समग्र दृष्टि से व्यापक अभिप्राय में। और किसी के लिए हो न हो प्रेमचन्द के लिए सत्याग्रह का अभिप्राय यही है। जीवन के कुछ सनातन मूल्य - दया, क्षमा, परोपकार, प्रेम, विनय, अपरिग्रह, निर्भय, सत्यनिष्ठ, अन्याय का प्रतिकार - जिनकी श्रृंखला उनकी अपनी प्रवृत्ति और संस्कार में शुरू होती है और टालस्टाय को अपने साथ जोड़ती हुई गांधी तक आती है [1] यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगा कि रंगभूमि का सूरदास गांधी जी का साहित्यिक संस्करण है। प्रेमचन्द की गांधीवाद के प्रति गहन आस्था का सर्वाधिक एहसास "रंगभूमि" में होता है। गांधी जी का सत्याग्रह

---

1. कलम का सिपाही : अमृत राय / पृष्ठ 327

ही वस्तुतः मूल प्रेरणा है ।

"रंगभूमि" के सूरदास का महत्व इस बात में नही है कि वह किस व्यवस्था की रक्षा हेतु संघर्ष करता है। उसका महत्व इस बात में है कि वह अन्याय को चुपचाप न सहकर उसका सक्रिय विरोध करता है उसका संकल्प दृढ़ है । उसकी धारणा है सफलता मिले या न मिले अन्याय का प्रतिकार सतत करते रहना चाहिए ।[1] प्रेमचन्द के समग्र कथा - साहित्य में सूरदास एक अप्रतिम पात्र हैं

---

1. सूरदास — xx मेरा धरम तो यही है कि अब मेरी चीज पर कोई हाथ बढ़ाये तो उसका हाथ पकड़ लूँ । वह लड़े तो लड़ूँ और चीज कोलिए प्रान तक दे दूँ । चीज मेरे हाथ आयेगी इसका मुझे मतलब नहीं मेरा काम तो लड़ना है और वह भी धरम की लड़ाई लड़ना है ——

"रंगभूमि" - (भाग-1) पृष्ठ 260

जिसमें शरीर बल अथवा पशुबल पर आत्मबल के विजय की अनुपम प्रतिष्ठा है । उसने अपनी झोपड़ी और जमीन मुक्त कराने से ही नैतिक विजय का प्रतीक नही बनता वरन उसने अपने प्रतिपक्षियों के हृदय पर भी सत्यनिष्ठा का सत्प्रियता का शाश्वत प्रभाव छोड़ता है।[1] सूरदास गांधी के अहिंसा - सिद्धान्त का साकार रूप हैं। अहिंसा का अनन्य उपासक, अपनी ही सहानुभूति में हो लठैतों द्वारा हिंसात्मक कार्यवाही को सहन नही कर पाता । उस समय

---

१. वह [अप]नी जमीन के बेचने का विरोध करता है लेकिन वह उससे जबरदस्ती छीन ली जाती है। यह उसको पहली नैतिक विजय है। वह अपने पड़ोसी की स्त्री को अपने यहाँ इसलिए शरण देता है कि पति उसको बहुत पीटता है। इसलिए लोग उसको भला बुरा कहते हैं। वह अपने व्यवहार से निन्दकों का मुह बन्द कर देता है। यह उसकी नैतिक विजय है। जीवन संग्राम के इसे आदर्श योद्धा की नैतिक विजय को प्रेमचन्द ने विशेष रूप से चित्रित किया है ।-

- प्रेमचन्द एक विवेचन : डॉ० इन्द्रनाथ मदान / पृष्ठ 78

प्रयुक्त उसके कथन में जैसे स्वयं गांधी के उदगार हो ।[1] इतना ही नहीं वह अपने सबसे शक्तिशाली प्रति पक्षी जानसेवक के प्रति भी शुद्ध हृदय रहता है। किंचिदपि दुर्भावना नहीं उपजने देता ।[2] रंग-भूमि का नायक विनय सर्वतो भावेन गांधीवादी विचारधारा से

---

1. तुम लोग यह अधम मचाकर मुझे क्यों कलंक लगा रहे हो? आग लगाने से मेरे दिल की आग न बुझेगी लहू बहाने से मेरा चित्त शान्त न होगा । आप लोगों की दुआ से यह आग और जलन मिटेगी । परमात्मा से कहिए मेरा दुःख मिटाएं । भगवान से विनती कीजिए मेरा संकट हरे जिन्होंने मुझ पर जुल्म किया है उनके दिल में दया-धरम जागे बस मैं आप लोगों से और कुछ नही चाहता - रंगभूमि(भाग-1)/342
2. मेरा तो आपने कोई अहित नही किया मुझसे और आपसे दुश-मनी ही कौन सी थी। हम और आप आमने- सामने की पालियों में खेले । आपने भरसक जोर लगाया मैंने भी भरसक जोर लगाया । जिसको जीतना था जीता, जिसको हारना था हारा ।

— रंगभूमि (भाग-2) / पृ0 392

समेटने में सफलता प्राप्त कर सके हैं । यद्यपि विनय प्रारम्भ में एक दुर्बल और अस्थिरचित्त उच्चवर्गीय युवक है जिसमें राष्ट्रीयता जनसेवा आदि के भाव उजागर होने की संभावना प्रतीत ही नही होती । प्रेमचन्द जैसा अद्वितीय रचनाकार है जिसने उसे अन्ततोगत्वा एक सेवा व्रतधारी, देशानुरागी के रूप में हमारे सामने उपस्थित कर दिया। उसी के प्रयत्नों से अल्पावधि में जसवन्त नगर की काया ही पलट जाती है । [1]

---

1. जसवंतनगर के प्रान्त में एक बच्चा भी नही है जो उन्हें न पहचानता हो । देहात के लोग उनके इतने भक्त हो गये हो गये है कि ज्यों ही वह किसी गाँव में जा पहुँचते हैं सारा गाँव उनके दर्शनों के लिए एकत्र हो जाता है । उन्हों उनको अपनी मदद करना सिखाया है। इस प्रान्त के लोग अब अन्य जन्तुओं को भगाने के लिए पुलिस यहाँ नही दौड़ जाते स्वयं संगठित होकर उन्हें भगाते हैं । जरा- जरा सी बात पर अदालतों के द्वार नही खटखटाने जाते , पंचायतों में समझौता कर लेते हैं ।

– रंगभूमि (भाग-2) / पृ0 293

प्रेमचन्द का गांधी दर्शन के सिद्धान्तों पर कितना अडिग विश्वास कितनी आन्तरिक आस्था उनकी थी, वह निम्नोद्धृत गीत से स्पष्ट है -

शान्ती - समर में कभी भूल कर धैर्य नही खोना होगा.
वज्र प्रहार भले सिर पर हो, नहीं किन्तु रोना होगा ।
अरि से बदला लेने का मन बीज नही बोना होगा,
घर में कान तूल देकर फिर तुझे नही सोना होगा ।।
देश - दाग को रुधिर - वारि से हर्षित हो धोना होगा।
देश - कार्य को भारी गठरी सिर पर रख ढोना होगा।
आंखें लाल भौंह टेढ़ी, क्रोध नही करना होगा,
बलि वेदी पर तुझे हर्ष से चढ़ कर कट मरना होगा ।
नश्वर है नरदेह, मौत से कभी नही डरना होगा ।।
सत्य - मार्ग को छोड़ स्वार्थ पथ पैर नही धरना होगा।
होगी निश्चय जीत धर्म की यही भाव भरना होगा,
मातृभूमि के लिए जगत में जीना और मरना होगा ।[1]

---

1. रंगभूमि (भाग - 1) पृष्ठ 54

कायाकल्प :-

महात्मा गांधी की विचारधारा में आध्यात्मिकता एवं नैतिकता " आध्यात्मिक मानवतावाद की संज्ञा से अभिहित करना संगत समझते हैं। साथ ही वह गांधी को आधुनिक युग चेतना के अध्यात्मिक पक्ष का निर्मायक स्वीकारते हैं।[1] प्रेमचन्द के इस उपन्यास में गांधीवाद के अध्यात्मिक एवं नैतिक पक्ष का प्रकारान्तर से प्रतिपादन हुआ है। उपन्यास में जो चक्रधर का तीव्र रोष मनोरमा के लेख "ऐश्वर्य से सुख" पढ़ कर उभरता है, वह वस्तुतः रचनाकार

---

1. वे उन चार मनीषियों में से हैं जिन्होंने हमारे आज की युग चेतना का निर्माण किया है वे चार मनीषी है- डार्विन, मार्क्स, गांधी और फ्रायड । डार्विन का क्षेत्र है प्राकृतिक जगत, मार्क्स का सामाजिक अर्थात आर्थिक और राजनीतिक जीवन, गांधी का आध्यात्मिक जीवन और फ्रायड का क्षेत्र है मनोजगत ।

   -- विचार और विश्लेषण (दिल्ली 1955)/पृ0 58

का रोष है । लेख द्वारा यह प्रदर्शित किया जाता है कि ऐश्वर्य से न केवल काल तथा लोकमत अपितु आत्मा तक विजित की जा सकती है। चक्रधर इस कथन पर प्रतिक्रिया व्यक्त करता है । [1] कि ~~अक्षअक्ष~~ वस्तुतः कायाकल्प का प्रतिपाद्य यही महात्मागांधी की आध्यात्मिक और नैतिक विचारधारा है। " महात्मा गांधी की मान्यता थी कि विचार और इच्छापूर्वक आवश्यकताओं को कम करके ही सच्चे सुधार और सच्ची सभ्यता की कल्पना की जा

---

1. काल पर विजय पाने का अर्थ यह नहीं है कि कृत्रिम साधनों से भोग विलास में प्रवृत्त हो वृद्ध होकर जवान बनने का स्वप्न देखे और अपनी आत्मा को धोखा दें । लोकमत पर विजय पाने का अर्थ है अपने सद्विचारों और सत्कर्मों से जनता का आदर और सम्मान प्राप्त करना। आत्मा पर विजय प्राप्ति का आशय निर्लज्जता या विषय वासना नहीं बल्कि इच्छाओं का दमन करना और कुवृत्तियों को रोकना है ।—— कायाकल्प (नवां संस्करण), पृष्ठ 95

सकती है । ऐश्वर्य लिप्सा के स्थान पर सन्तोष, अपरिग्रह अस्तेय, संयम, और त्याग की प्रतिष्ठा आवश्यक है ।[1] कायाकल्प में राजा विशाल सिंह, चक्रधर, मनोरमा, अहल्या, और रानी देव प्रिया के चरित्र में धनोपासना - जनित व्यापक असंतोष और चारित्रिक पतन का चित्रण किया गया है । जन्म और पुर्नजन्म, पाप और पुण्य के फल का कर्मविपाक सिद्धान्त और नियतिवादी आस्था का आधार भी गांधीवादी है । आवश्यकताओं का सरलीकरण और आत्मनियंत्रण ही कुवृत्तियों को रोक सकता है ।[2] प्रेमचन्द ने रानी देव प्रिया का चित्रण करते समय वही आध्यात्मिकता तथा नैतिकता का मापदण्ड

---

1. गांधी साहित्य (भाग - 5)/ पृष्ठ 142

2. प्रेमचन्द एक सिंहावलोकन : डा० श्री साने / पृ० 33

अंगीकार किया है ।[1]

कायाकल्प में अनेक ऐसे स्थल है जहाँ पर प्रेमचन्द रहस्यवाद और आध्यात्मिकता की भूल भुलैया में खो जाने का प्रयास करते हैं लेकिन इन स्थलों को उपन्यास के शेष कथाभाग की तुलना में सर्व प्रमुख नहीं माना जा सकता ।[2]

---

1. रियासत उनके भोग विलास का साधन मात्र थी। प्रजाओं को क्या कष्ट होता है उन पर कैसे कैसे अत्याचार होते हैं सूखे झूरे की विपत्ति क्योंकर उनका सर्वनाश कर देती है, इन बातों की ओर कभी उनका ध्यान न जाता था उन्हें जिस समय जितने धन की जरूरत हो उतना तुरन्त देना मैनेजर का काम था। वह ऋण लेकर दे चोरी करें या प्रजा का गला काटे इससे उन्हे कोई प्रयोजन न था ।

   -- कायाकल्प /पृ0 52

2. प्रेमचन्द और गांधीवाद: रामदीन गुप्त / पृष्ठ 223

निर्मला :-

"निर्मला" प्रतिज्ञा और सेवासदन की श्रृंखला में एक विश्लेषण प्रधान त्रासदी है जिसका कारण अन्त निर्मला की मृत्यु के साथ होता है। दहेजप्रथा के घातक परिणामों के साक्ष्य पर नयी पीढ़ी का उद्बोधन गांधी जी की तत्सम्बन्धी धारणा का समर्थन करता है ।[1] गांधी जी दहेज प्रथा के विरोधी रहे क्योंकि वह विवाह दो आत्माओं का सम्मिलन है न कि कोई व्यावसायिक मृत्यु ।[2] उनके अनुसार जब तक किसी विशिष्ट जाति के गिने - गिनाये लड़के - लड़कियों में से वर या वधू चुने जाने का प्रतिबन्ध रहेगा तब तक इसी भांति वरों का मोल-भाव बढ़ता जायेगा ।[2]

---

1. प्रेमचन्द एक सिंहावलोकन : प्रा०डा० श्री साने (पृ० 33)
2. इस प्रथा को मिटाना ही पड़ेगा । विवाह रूपये की खातिर माँ-बाप का किया गया सौदा नही होना चाहिए । इस प्रथा का ताल्लुक जाति पांति से बड़ा गहरा है। जब तक किसी खास जाति के ही सौ दो सौ युवक - युवतियों के भीतर चुनाव करना पड़ेगा, तब तक इस प्रथा की कितनी हो निंदा की जाय वह कायम रहेगी ।- स्त्रियां और उनकी समस्याएं : गांधी जी / पृ० 70 - 71.

गबन :-

आभूषण प्रेम की प्रवृत्ति इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। इस प्रवृत्ति को गांधी जी पतनोन्मुखी स्थिति का द्योतक एवं पराधीनता का प्रतीक स्वीकारते रहे । प्रेमचन्द अकृत्रिम आडम्बर रहित जीवन को सुखमय मानते तथा सरल जीवन पद्धति के समर्थक रहे, इस कारण उन्होंने मध्यम वर्ग की आडम्बर प्रियता की आलोचना एवं सरल जीवन को प्रशंसित करने का सिद्धान्त स्वीकारा। वह आभूषण प्रियता को नकारते हैं ।[1] उपन्यासकार की यह विचारधारा "गबन" के दो पात्र रमेश तथा देवीदीन में मुखर है ।[2]

---

1. आभूषण प्रेम की प्रथा के कारण होनेवाला आर्थिक, नैतिक, दैहिक आत्मिक और धार्मिक पतन अकल्पनीय है ।—गबन / पृ0 66

2. वह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिए बाल बच्चों का पेट काटकर गहनों की भेंट कर दिया जाता है बच्चों को दूध न मिले न सही । घी की गन्ध तक उनकी नाक न पहुँचे न सही । मेवों और फलों के दर्शन उन्हे न हों, कोई परवाह नहीं । पर देवी जी गहने जरूर पहनेगी और स्वामी जी गहने जरूर बनवाएंगे ।—

--- गबन/ पृष्ठ 65 - 66

गांधी जी द्वारा प्रवर्तित स्वदेशी आन्दोलन का शुद्ध झलक इस उपन्यास में प्राप्त होती है पात्र देवीदीन मात्र स्वदेशी आन्दोलन का पक्षधर ही नहीं वरन उसने दो - दो युवा पुत्रों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भेंट कर दिया । वह ऐसे तथाकथित देश भक्तों के सदृश्य नहीं है जो प्रदर्शन निमित्त खद्दर धारण करता , वह प्रेम चन्द द्वारा अवतारित मध्यमवर्गीय एक सच्चा देशभक्त चरित्र है । वह उच्च वर्ग के कांग्रेस द्वारा परिचालित नेतृत्व की वह प्रकृति समझता है जो प्रकाश न्तर से मात्र पाखण्ड है । [1] यह सब

---

1. इन बड़ें बड़े आदमियों के किए कुछ न होगा । इन्हें बस रोना आता है छोकरियों की भांति बिसूरने के सिवा इनसे और कुछ नहीं हो सकता बड़े बड़े देश भक्तों को बिना विलायती सराब के चैन नही आता। उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देसी चीज न मिलेगी । दिखाने को दस- बीस कुरते गाढे के बनवा लिए, घर का और सब सामान विलायत है। सब के सब भोग- विलास में अन्धे हो रहें है छोटे भी और बड़े भी उस पर दावा है । कि देस का उद्धार करेंगे ।
गबन - पृष्ठ 218

प्रेमचन्द की चरित्र विश्लेषणात्मक चातुर्य है । अस्तु । प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य गांधीवादी विचारधारा का पक्षधर किस सीमा तक है, यह अब तक प्रस्तुत आकलनात्मक लघु विवेचन से स्पष्ट है। सन्दर्भित उपन्यासों के अतिरिक्त "कर्मभूमि" एवं उत्तर गांधी युगीन उपन्यास " गोदान" में भी गांधीवाद मुखर होता परिलक्षित होता है ।

प्रेमचन्द द्वारा लिखित कहानियों के सन् 1917 - 1936 तक प्रकाशित संग्रह, " सप्तसरोज" नवनिधि , प्रेम, पूर्णिमा, प्रेम पचीसी, प्रेम प्रसून, प्रेम - प्रमोद, प्रेम - प्रतिमा, प्रेम-द्वादशी, प्रेम-तीर्थ, प्रेम - चतुर्थी, अग्नि- समाधि तथा अन्य कहानियां पाँच फूल, समरयात्रा और ग्यारह अन्य राजनीतिक कहानियां सप्त सुमन , प्रेम - पंचमी, प्रेरणा और अन्य कहानियां, प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियां तथा मानसरोवर का अनुशीलन समग्र भी हमें गांधीवाद के सैद्धान्तिक पक्ष को विवृत करने के लिए दिशा - संकेत देता है ।

डॉ० राम जी तिवारी के शब्दों में - " गांधीवादी प्रभाव के सर्वेक्षण प्रक्रिया में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रेमचन्द के साहित्य में गांधीवादी का आरोह और अवरोह निरन्तर दिखाई पड़ता है। बाह्य जीवन के परिवर्तनों में गांधीवाद की उपयो - गिता के प्रति शंकालु होने पर भी वे गांधीवाद के वैयक्तिक शील विषयक आदर्शों के प्रति स्वतंत्र आस्थावान बने रहे। वस्तुतः वे बाह्य जीवन के कलेवर में गांधीवादी आदर्शों का सनातन आत्मा को रक्षित रखते थे। इस द्वन्द्व के कारण अनेक स्थलों पर कलाका- रोचित संयम और मनोवैज्ञानिक गहनता का प्रभाव भी प्रायशः परिलक्षित होता है।[1]

---

1. प्रेमचन्द : एक सिंहावलोकन : संपादक - प्रो० ह० श्री साने पृष्ठ- 35.

"उपसंहार"

....

परिस्थिति- सापेक्षता के परिणाम स्वरूप वैचारिक प्रक्रिया पर सामायिकता का प्रभाव पड़ना अनिवार्य है, सामाजिक जीवन चाहे जितना गतिशील और परिवर्तनशील क्यों न हो उसमें शाश्वत और मूलगामी अंश होता ही है जिससे समाज- जीवन का प्रवाह और सातत्य बना रहता है। जो विचार और साहित्य सामाजिक जीवन के शाश्वत अंश से संपृक्त होता है वही विचार और साहित्य "अक्षर" होने का अधिकारी होता है"- दि0 ब0 केरूर {प्रेमचन्द्र : एक सिंहावलोकन : पुरोवाक् से} ।

श्री केरूर" जी का यह कथन कितना सत्य, कितना सटीक कितना सापेक्ष है प्रेमचन्द्र : कृतिकार एवं व्यक्ति के लिए । वस्तुतः प्रेमचन्द्र का न केवल रचना- संसार अपितु उस संसार में संनिविष्ट पात्र उनके कार्य कलाप, उनकी सोच, उनकी चिन्तन- प्रक्रिया सब कुछ अक्षर, न क्षरित होने वाली, अक्षम, शाश्वत एवं मानव= समाज , उसकी जीवन रेख को निर्मित - सूत्र रचनेवाली, युगीन आस्था और विश्वास को जीवन्त रखने वाली बन चुकी है । निस्सन्देह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द्र की लेखनी ने बीसवीं शती के दूसरे दशक में अवतरित होकर एक दिशा - बोध न केवल रचना धर्मियों के लिए उपस्थित किया अपितु उनमें एक संजीवनी का संचार करके युग-बोध एवं सामाजिक संचेतना का सजग रहने और सजगता के परिप्रेक्ष्य में अपनी कर्म सक्रियता द्वारा सातत्य- धर्म- निर्वाह का एक शाश्वत मार्ग भी प्रशस्त कर दिया ।

प्रेमचन्द्र की पहली कहानी "पंच परमेश्वर" 1916 में प्रकाशित हुई। इस कहानी ने पूर्ववर्ती कहानी लेखकों के लिए एक चुनौती बन गयी। कारण यह कहानी एक यथार्थ संश्लिष्ट आदर्श- चित्रण को लेकर जो अवतरित हुई तो उसमें सामाजिक के साथ - साथ सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक आदर्शोन्मुख सन्देश का विस्तार करने का एक सत्य, तत्कालीन रचनाकारों के सामने उजागर करने लगी। प्रेमचन्द्र जी भारतीय अस्मिता, राष्ट्रीयता प्राचीन परम्पराओं के पोषक होकर भी नितान्त ही प्राचीनोन्मुख चिन्तन धारा से आक्रान्त नहीं कहे जा सकते। उन्होंने प्राचीनता को वर्तमान से संयोजित करने और वर्तमान को भविष्य सापेक्ष बनाने के लिए सतत अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में पात्रों की जीवन्तता के माध्यम से प्रयास किया, कारण वह तात्कालिक ताने - बाने में एक सत्य और शाश्वत वितान को निर्मित चाहते रहे - "वे ईमानदारी के साथ वर्तमान काल को अपनी वर्तमान अवस्था का विश्लेषण करते रहे। उन्होंने देखा कि बन्धन भीतर का है, बाहर का नहीं। एक बार अगर ये किसान, ये गरीब, यह अनुभव कर सकें। कि संसार की कोई भी शक्ति उनको नहीं दबा सकती तो वे निश्चय ही अजय हो जायें बाहरी बन्धन उन्हें दो प्रकार के दिखायी दिये - भूतकाल की संचित स्मृतियों का जाल, और भविष्य की चिन्ता से बचने के लिए संगृहीत धनराशि। एक का नाम है संस्कृति और दूसरे का सम्पत्ति। एक का रथवाहक है धर्म और दूसरे का राजनीति/ प्रेमचन्द्र इन दोनों को मनुष्यता का बाधक मानते हैं। एक जग

अपने मौजी पात्र (मेहता) से कहलाते हैं - " मैं भूत की चिन्ता नहीं करता भविष्य की परवाह नहीं करता । भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है । भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है । हममें जीवनी - शक्ति इतनी कम है कि भूत, और भविष्य में फैला देने से वह क्षीण हो जाती है । हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढ़ियों और विश्वासों तथा इतिहासों के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं । उठने का नाम नहीं लेते । वह सामर्थ्य ही न रही । जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानवधर्म को पूरा करने में लगानी चाहिए थी, सहयोग में, भाई चारे में, वह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप- दादों का ऋण चुकाने में भेंट हो जाती है (हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग 3 / पृष्ठ 497) ।

किसी भी रचनाकार की रचनाधार्मिता का मूल्यांकन वस्तुतः उसमें अभिनिवेश पाये युगबोध, उसके वर्तमान का भविष्य - सापेक्ष विश्लेषण की गहनता एवं उसके माध्यम से पड़े चिन्तन- प्रक्रिया और सत्य- सम्पृक्त विचार धारा को अविच्छिन्न रखने में साहाम्य प्राप्त हो सके । कुछ रचनाकार युग- सापेक्ष रचनाधर्म से निज "स्व" को संश्लिष्ट करते हैं, कुछ में "स्व" में युग समग्र की सोच को सुदृढ़ आधार के मौलिक एवं सार्वकालिक सूत्र की प्राप्ति होती है । दोनों कोटि वाले रचनाकारों का रचनाकर्म आदर्शो न्मुखता के परिणाम स्वरूप अस्तित्व भाजन बनता है । हाँ, दोनों की

गुणवत्ता का समीकरणीय धरातल निश्चय ही भिन्न होता है । प्रथम का निर्मेय और दूसरे का निर्मित । प्रेमचन्द्र भी दूसरी कोटि के रचनाकारों में से रहे, उनकी रचनाधार्मिता ने निज "स्व" में समाज को, युग को, उनमें समाविष्ट सत्य, आदर्श, तद्धर्मी चिरन्तन भाव - बोध को समेट लिया । बीसवीं शती के साहित्यकारों में प्रेमचन्द्र ऐसा महाचेता रचनाकार रहे जिसने अपने जीवन दर्शन द्वारा न केवल युग- साहित्य अपितु युगधर्म, युग" चिन्तन के साथ - साथ स्थिति- परिस्थिति एवं परिवेश को जीवन - सत्य का दिव्य सम्क्षात्कार उपलब्ध कराया । प्रेमचन्द्र को व्यक्ति सद्भाव, सदाशय, संवेदना, सहकार, सहानुभूति आदि से समान्वित उदात्त व्यक्तित्व, का मूल था, इस कारण उनका समग्र साहित्य सत्यं शिवं सुन्दर का सम्यक् संयुति उपस्थित करता है । मानवता वाद उनके व्यक्ति का धर्म और उसकी विवेचना उनके साहित्य का सकल मर्म रहा है । उसकी व्यापक परिभाषा प्रेमचन्द्र की चिन्तन प्रक्रिया का छोर, उन दोनों के मध्यान्तराल रचनाधार्मिता रही है। यही कारण है कि उन्होंने अपने सत्य मानवतावाद को गांधी वाद का साहित्य - सर्जना के रूप पर्याप्त स्वरूप उपस्थित करने में सफलता प्राप्त की । वह गांधीवाद के समर्थक कम किन्तु परिपोषक अधिक रहे, इस कारण ही उनके कथा साहित्य में गांधी वाद का विशुद्ध रूप , सत्य अवधारणा का समुचित व्याख्यान पात्रों के माध्यम से किया गया मिलता है । उनका कोई भी कथा पात्र, मेरी धारणा है, गांधीवाद की थोथी दलील देता नहीं दृष्टिगोचर होता वरन् उनकी विचारधाराओं के अमृत प्रवाह को गतिमान बनाता दिखायी पड़ता है ।

प्रेमचन्द्र का साहित्य कालजयी है उसमें विवेचित मानव- मूल्य , जीवन सँचेतना, यथार्थ साथ ही आदर्शोन्मुखी पृष्ठभूमि, उन सबको सँयोजित करने वाले बिन्दु, उनको गतिशील बनाने वाले व्याख्या सूत्र शाश्वत हैं, न तो वे अतीत के कहे जा सकते हैं और न वर्तमान से असम्बद्ध । प्रेमचन्द्र जी ने यद्यपि अपने युग- सन्दर्भ के ही परिप्रेक्ष्य में अपने कथा साहित्य को सँजोया और सँवारा है किन्तु सामाजिक एवं साँस्कृतिक विचारधारा में बिन्दु तथा उनका विस्तार क्रम सदा शाश्वत है, कारण सत्यान्वेषण ही किसी रचनाकार के विश्लेषण - रीति का आधार होता है, जिसे प्रेमचन्द्र जी बखूबी जानते रहे । साथ ही यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि सामाजिक - मूल्य और साँस्कृतिक जीवन्तता के सूत्र सदा से एक समान रहे हैं, विषमता - बोध, निजता की सँतुष्टि, स्व- परिपोषकता एवं महत्वाकांक्षा कभी भी जीवन से पृथक न हुए हैं और न हो सकते हैं । इस दृष्टि से प्रेमचन्द्र साहित्य का गहन- अनुशीलन, परिशीलन, अध्ययन एवं परिवीक्षण एक निश्चित दिशा - बोध देता है कि अर्द्धशती पूर्व उनके कथा साहित्य में विवेचित, विश्लेषित विचाराधारा, हमें आज के परिप्रेक्ष्य में पूर्ण रूप से साम्प्रतिक प्रतीत होते हैं । यदि हम कहें कि कथाकार प्रेमचन्द्र न केवल युगप्रवर्तक अथवा युग यथार्थ के विश्लेषक रहे अपितु वह एक क्रान्तद्रष्टा लेखक थे कारण उनके कथा पात्र, उनके कार्य कलाप, उनका आचरण, उनकी विचार धारा साम्प्रतिक सोच, साम्प्रतिक वृत्ति , प्रवृत्ति , प्रकृति का प्रतिनिधित्व करते परिलक्षित होते हैं " जिस समाज में दौलत पुजती है, जहाँ मनुष्य का मोल बैंक एकाउण्ट

और टीमटाम से आँका जाता है, वह पग- पग पर प्रलोभनों का जाल बिछा हुआ है और समाज की मुव्यवस्था आदमी में ईर्ष्या, द्वेष, अपहरण और नीचता के भावों को उकसाती और उभारती रहती है, गुरु सेवक और रामदुलारी उस जाल में फँस जायें, उस प्रवाह में बह जायें तो कोई और आश्चर्य नहीं।"

§ दो बहनें §

प्रेमचन्द्र का साहित्य, समग्रतः प्रासंगिक है और अभी दशकों तो रहेगा, यह कहने में हमें किंचिदपि, संकोच नहीं। उनके साहित्य- सर्जना का लक्ष्य लोकमंगल का विस्तार तथा मनुष्य में देवत्व के भावों को उजागर ही नही वरन् प्रतिस्थापित कर देना रहा है। वह अपने युग की सामाजिक विकृतियों, सांस्कृतिक विसंगतियों, धार्मिक- कुवृत्तियों का चित्रण कर, उसमें प्रच्छन्न सत्य को उजागर करने एवं आदर्शोन्मुखी यथार्थ की प्रतिष्ठा के लिए यत्नशील रहे और यही भारतीय रचनाकार का दायित्व रहा है। वह प्रत्येक समस्या का विवेचन सर्वदा विशिष्ट आदर्श की ओर उन्मुखी भाव से करना ही श्रेयस्कर स्वीकारें। उनका निश्चित मत रहा - मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है। जमाने के छल, प्रपंच और परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है, उपदेश से नहीं, नसीतों से नही - भावों को स्पंदित करके मन के कोमल तारों पर चोट लगाकर, प्रकृति से

सामंजस्य उत्पन्न करके ॥ कुछ विचार ॥ स्पष्ट है कि प्रेमचन्द्र जीने साहित्य के माध्यम से, अत्यन्त सफलतापूर्वक कलात्मक रीति से समाज में एक सत्य का आदर्श, सांस्कृतिक - परिप्रेक्ष्य से परिवेष्टित करके उपस्थित किया जिसका परिदृश्य साम्प्रतिक युग में भी स्पष्ट है । इस प्रसंग में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का कथन उद्धृत करना संगत समझते हैं - महज सामाजिक स्थिति बदल जाने से किसी लेखक की प्रासंगिकता समाप्त नहीं हो जाती । दरअसल बड़े लेखक की पहिचान यही होता है कि वह कालको अतिक्रमित करता है । तत्कालीन अन्याय और शोषण के विरुद्ध संघर्ष के अलावा भी उसकी भाषा और शिल्प में बहुत कुछ ऐसा होता है जो स्थायी बना रहता है । इतना ही मानव स्वभाव की रहस्यमयता के साथ वह प्रकृति के सौन्दर्य और चराचर जगत से अपने जुड़ाव को अपनी कृति में इस तरह बुने रहता है कि स्थितियाँ बदल जाने पर भी पाठक का लगाव बना रहता है । "

कतिपय विचारकों की दृष्टि में साम्प्रतिक स्थिति काफी कुछ परिवर्तित हो चुकी है तथा वैचारिक दृष्टि, और आचारों के परिप्रेक्ष्य में हमारी स्थिति सम्प्रति प्रगति पथी बन चुकी एवं हम प्रेमचन्द्र के युग से आगे पहुँच चुके हैं परन्तु यह दृष्टिकोण सर्वथा संगत नहीं कहा जा सकता । प्रेमचन्द्र के साहित्य में अभिव्यक्त व्यंजना, स्पष्टोक्ति तथा समस्याएँ आधुनिक युग में भी किसी भी विचारक की दृष्टि को आकृष्ट करनेमें सहज समर्थ है । एक उदाहरण - बताओ कौन घूस नहीं लेता ? एक सीधी नकल लेने जाओ, एक

रुपया लग जाता है । बिना तहरीत लिये थानेदार रपट नहीं लिखता । कौन वकील है जो झूठे गवाह नही बनाता § लाला अमरकान्त का कथन, कर्मभूमि में § । इसी प्रकार गोदान" में जब मेहता" कहता है - पुरूष में नारी के गुण आ जाते है तो वह महातमा बन जाता है नारी में पुरूष के गुण आ जाते है तो वह कुलटा हो जाती है । पुरूष आकर्षित होता है स्त्री की ओर जो सर्वांश में स्त्री है । § इसी प्रकार अनेकशः उदाहरण है जो प्रेमचन्द्र - साहित्य को कालजयी रूप में प्रतिष्ठत करके उसे प्रासांगिक बनाते है - x x x रिश्वत तो नही लेते लेकिन इतना जानता हूँ कि वह भत्ता बढ़ाने के लिए दौरे बहुत करते हैं, यहाँ तक कि हरसाल बजट के किसी दूसरे मद से रुपये निकालने पड़ते थे । x x x लेकिन मजा तो यह है कि उतने दौरें वास्तव में नही करते, जितने कि अपने रोजनामचे में लिखते हैं § सभ्यता का रहस्य § प्रेमचन्द्र जी का यह कथन आज के युग का सत्य है ।

निष्कर्ष यह कि कथाकार प्रेमचन्द्र का व्यक्ति तो नहीं किन्तु उनका साहित्यिक व्यक्ति क्षण प्रतिक्षण हमारी चिन्तन धार, हमारी भौतिक-लिप्सा, हमारी मायामयी प्रवृत्ति और हमारी सामाजिक - सांस्कृतिक सोच को प्रभावित करने और सत्य प्रतिष्ठापनार्थ प्रेरणा देने के लिए हमारे मध्य प्राणवन्त हैं ।

xxxxxxxx

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक	प्रकाशन वर्ष
1- प्रेमचन्द	सं0 सत्येन्द्र	राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली- 110002 प्रथम संस्करण, 1976
2- प्रेमचन्द भारतीय साहित्य-संदर्भ	सं0 निर्मला जैन,	वाणी प्रकाशन दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण 1981
3- प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य में सांस्कृतिक चेतना	नित्यानन्द पटेल,	लिपि प्रकाशन, 1 अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली-110002 प्रथम संस्करण 1980
4- प्रेमचन्द: घर में	शिवरानी देवी	आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6 1956ई0
5- प्रेमचन्द: जीवन और कृतित्व	हंसराज रहबर,	1961ई0
6- प्रेमचन्द: एक अध्ययन	डॉ0 राजेश्वर गुरु,	मध्यप्रदेशीय प्रकाशन, समिति, जुमेराती गेट, भोपाल: 1958
7- प्रेमचन्द और गाँधीवाद,	प्रो0 रामदीन गुप्त	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-6, 1961
8- समस्या मूलक उपन्यासकार-प्रेमचन्द	डॉ0 महेन्द्र भटनागर,	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी-1 1961
9- प्रेमचन्द: उपन्यास और शिल्प,	श्री हरस्वरूप माथुर,	भारती प्रतिष्ठान, पी0रोड कानपुर 1957
10- प्रेमचन्द: साहित्यिक विवेचन,	श्री नन्द दुलारे बाजपेयी,	हिन्दी भवन, 312, रानीमंडी, इलाहाबाद 1956

ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक	प्रकाशन /वर्ष
12- प्रेमचन्द:एक विवेचन ,	डॉ0 इन्द्रनाथ मदान	राजकमल प्रकाशन,प्रा0लि0 दिल्ली,संस्करण-4 1968
13- प्रेमचन्द के नारी पात्र,	ओम अवस्थी,	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-, 1962
14- प्रेमचन्द्र के साहित्य-सिद्वान्त	नरेन्द्र कोहली	अशोक प्रकाशन, दिल्ली-6 1966
15- प्रेमचन्द के पात्र,	कोमल कोठारी	अक्षर प्रकाशन प्रा0लि0, अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली-,प्रथम संस्करण 1970
16- प्रेमचन्द साहित्य में व्यक्ति और समाज	डॉ0 रक्षापुरी,	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-, 1970
17- प्रेमचन्द और गोदान	डॉ0 कृष्ण देव शारी,	भारती भवन चण्डीगढ़ -2, प्रथम संस्करण 1965
18- प्रेमचन्द:एक अध्ययन,	डॉ0 राम रतन भटनागर,	किताब महल, इलाहाबाद
19- प्रेमचन्द की उपन्यास कला,	जनार्दन प्रसाद झा,"द्विज"	वाणी मंदिर ,छपरा, 1941
20- प्रेमचन्द:व्यक्ति और साहित्यकार	श्री मन्मथनाथ गुप्त,	सरस्वती प्रेस,इलाहाबाद 1961

लेखों के संग्रह

1- प्रेमचन्द और गोर्की,	शचीरानी गुर्टू,	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1955
2- प्रेमचन्द-प्रतिभा,	डॉ0 इन्द्रनाथ मदान,	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद 1957
3- उपन्यासकार प्रेमचन्द,	डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त,	अशोक प्रकाशन, दिल्ली-6 1956
4- प्रेमचन्द:चिन्तन और कला,	डॉ0 इन्द्रनाथ मदान,	सरस्वती प्रेस, वाराणसी

	लेखक/सम्पादक	प्रकाशन/वर्ष
5- प्रेमचन्द:कृतित्व और कला,	श्री प्रेम नारायण टंडन,	विद्या मंदिर,रानी कटरा, लखनऊ, 1954
6- हंस:प्रेमचन्द अंक,	अमृतराय,	मई, 1937
7- "आजकल": प्रेमचन्द अंक	-	अक्टूबर,1952